

**TEXT FLY
WITHIN THE
BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182139

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. **H83**
N17N

Accession No. **H2619**

Author

Title **आमक**

This book should be returned on or before the date
last marked below.

प्रसन्नता से खिल उठे। रेनु तो हाथ के ~~खिलोने~~ केक आनन्द की टांगों से लिपट गई। आनन्द ने उसे गोद में उठा लिया।

आश्चर्य-चकित निशा से न रहा गया। उसने धीरे से संध्या को समीप खींचते हुए पूछा, “तो यही है वह श्रीमान !”

“हाँ री...क्यों कैसे लगे ?”

“So, So...” यह कहते ही निशा साथ वाले कमरे में भाग गई। संध्या ने तीव्रता से उसका पीछा किया और उसकी कमर में चुटकी लेते बोली,

“अब बोल क्या कहा था तू ने ?”

“अरी लड़ती क्यों है—रुह जो दिया अच्छा Good...अब प्राण लेगी क्या...सच कहती हूँ Very good...excellent...wonderful...”

“अब आई सीधे मार्ग पर।” संध्या उसे छेड़ते हुए बोली।

“लाठी के भय से तो लोग दिन को भी रात कह डालते हैं।” कमर को सहलाते निशा ने बुड़बुड़ा कर कहा।

संध्या फिर उसकी ओर लपकी पर पापा की आवाज़ सुनकर रुक गई। सब उसी कमरे में आ पहुँचे। दोनों को वहाँ देखकर राय साहब बोले,

“अरे तुम अभी यहीं हो...मैंने जाना तुम चाय का प्रबन्ध कर रही हो...आज तो चाय भी बढ़िया बनानो चाहिये...आनन्द जो आया है...क्यों संध्या...!”

“हाँ पापा अभी तैयार हुई।” संध्या ने धीमे स्वर में कहा।

“न पापा; आनन्द साहब चाय तो निस दिन पी जाते हैं किन्तु अपना वचन कभी पूरा नहीं करते।” रेनु ने मुँह बनाकर कहा।

“कहो तो...कौनसा वचन ?” आनन्द ने प्यार से रेनु की ओर देखते पूछा।

“नयी मोटर का...”

“ओह ! और यदि हम यह वचन अभी पूरा कर दें तो.....”

“तो चाय के साथ मिठाई भी.....”

“अच्छा तो बात से बदलना मत ।”

“अजी...आप की भाति भूटे नहीं हैं ।” रेनु की इस बात पर सब हँस पड़े ।

“तो लो, अपनी आँखें बंद करो जरा ।”

जैसे ही रेनु ने अपनी आँखें मीची आनन्द ने मामने की खिड़की खोल दी । रेनु खोलकर उल्लास से चिल्लाई, “पापा...मोटर...” और तीव्रता से बाहर भागी ।

सब खिड़की की ओर लपके और बाहर भाँककर हलके भूरे रंग की एक मोटर गाड़ी को देखने लगे जो पिछवाड़े खड़ी थी ।

थोड़े ही समय में घर का प्रत्येक व्यक्ति नयी गाड़ी के पास इकट्ठा हो गया और हर कल पुर्जे का निरीक्षण होने लगा । संध्या और रेनु तो प्रसन्नता से फूली न समा रही थी ।

आनन्द बम्बई की एक प्रसिद्ध मोटर कम्पनी का सेल्ज मैनजर था और मोटर की खरीद के विषय में ही उसका राय साहब के यहाँ आना-जाना आरम्भ हुआ जो अब इस घनिष्टता में परिवर्तित हो गया था । यूँ तो वह राय साहब के एक निकटतम मित्र का भांजा था, किन्तु अधिक जान पहिचान कभी कभार के मिलने से बढ़ी थी । इसी सम्बन्ध में राय साहब कुछ और ही सोचे बैठे थे....और वह था आनन्द और संध्या का विवाह ।

यह बात आनन्द और संध्या से भी न छिपी थी । वे राय साहब की सहमति को जान चुके थे । संध्या से हर भेट आनन्द को लक्ष्य के निकट ला रही थी ।

चाय के पश्चात् जब सब अपनी धुन में खोये थे आनन्द अवसर पा कर चुपके से कार की ओर बढ़ा जहाँ संध्या बड़े ध्यान से उसे देख रही थी । आनन्द समीप पहुँच कर बोला;

“क्यों अच्छी लगी.....।”

“अच्छी !...बहुत अच्छी—और फिर हनका भूरा रंग तो मेरा प्रिय रंग है।”

“तभी तो लाया हूँ यह रंग, सादा सा...तुम्हें भी ती सादापन अत्यंत प्रिय है।”

“तो क्या यह आपकी पसन्द नहीं है ?”

“है तो...चमकीले भड़कीले रंग तो मुझे भी नहीं भाते।”

“परन्तु कभी-कभी इनकी चमक आकर्षित भी कर लेती है...महोदय।” संध्या ने कुछ ऐसे ढंग से उत्तर दिया कि आनन्द हँस पड़ा और बात बदलते बोला,

“अच्छा छोड़ो इन बातों को...एक बात मानोगी ?

“क्या ?” संध्या ने उत्सुकता पूर्वक पूछा।

“चलो, नयी कार में घूमने चले।”

“पापा से जाकर पूछ आऊँ !”

“कैसी विचित्र बात करती हो...यह भी भला कोई पूछने की बात है ?

“तो यूँ ही चली चलूँ क्या।”

“नहीं तो क्या...निशा को तो घर तक छोड़ने तुम्हें जाना ही होगा।”

“बहाना बना कर चोरों की भाँति चलूँ ?”

“तो न सही...रहने दो।” सामने से आती निशा को देखकर आनन्द ने मुँह बनाते कहा और भीतर की ओर चला गया। राय साहब ने उसे देख कर पूछा।

“क्यों, संध्या को कैसी जची ?”

“मेरे सामने तो वह अच्छा ही कहेगी। और हाँ ! राय साहब ड्राईवर का क्या करना होगा ?”

“गाड़ी ले दी है तो इसका चलाने वाला भी तुम्हें ही ढूँढ़ना पड़ेगा ।”

“तो गाड़ी उस समय तक.....”

“नहीं, नहीं... उसे तो ले लो... अभी रजिस्ट्रेशन इत्यादि में भी तो दिन लग जाएंगे ।”

“यदि ड्राईवर शीघ्र न मिला तो.....”

“तो आपको ड्राईवर बना लेगे ।” पास खड़ी रेनु बोल उठी ।

“हट दुष्ट कहीं की ।” मालकिन ने रेनु को डाँटते हुए कहा । राय साहब यह सुन कर मुस्करा दिये और फिर आनन्द की ओर देखते हुए बोले,

“तो इसमें हानि ही क्या है । इसी बहाने हम भी मोटर चलाना सीख लेंगे ।”

आनन्द उन से बिदा लेकर मोटर की ओर बढ़ा । निशा और संध्या बग़ैर न थीं । आनन्द ने इधर-उधर देखा किन्तु वे कहीं रिखाई न दीं । विवश खिन्न मन से उसने मोटर स्टार्ट की और फाटक से बाहर निकल गया ।

गाड़ी थोड़ी ही दूर गई थी कि सामने पटरी पर संध्या और निशा पैदल चलती हुई दीख पड़ीं । आनन्द ने चाहा कि गाड़ी को दौड़ाकर आगे बढ़ जाए किन्तु इससे पहले ही दोनों ने मुड़कर उसे आते देख गाड़ी खड़ा करने के लिए संकेत किया । आनन्द ने गाड़ी बिल्कुल उनके समीप लाकर रोक ली और संध्या को देखते हुए गम्भीरता पूर्वक बोला, “कहिये ।”

“देखिये हमें सामने चर्च तक जाना है... यदि लिफ्ट दे सकें तो...”

“ओह समझा, परन्तु मेम साहब ! यह गाड़ी मेरी नहीं राय साहब की है और उनकी आज्ञा के बिना किसी को लिफ्ट देना उचित न होगा ।”

“तो क्या हुआ... एक दिन हमारे लिये चोरी ही सही ।”

“नहीं मेम साहब, मुझ गरीब की नौकरी का प्रश्न है” मैं अपने पेट पर स्वयं लात कैसे मार सकता हूँ ?”

“घबराएं नहीं, यदि राय साहब ने नौकरी से जवाब भी दे दिया तो हम अपने यहाँ रख लेंगे ।”

“आप क्या देंगी मुझे” केवल दो समय का खाना—राय साहब तो मुझे वह कुछ देने वाले हैं जो आप क्या दे पायेंगी ?”

“हम भी तो सुनें—क्या ?”

“अपनी लाडली” अर्थात् हमें अपना”

“आनन्द” !” संध्या चिल्लाई और निशा को खिलखिलाते देखकर लज्जा गई । आनन्द ने हाथ बढ़ा कर मोटर का द्वार खोला और दोनों हँसती हुई भीतर आ बैठीं ।

निशा को उसके घर छोड़कर आनन्द ने गाड़ी समुद्र की ओर मोड़ ली । दोनों कुछ समय तक मौन बैठे रहे । आनन्द गाड़ी में लगे दर्पण में संध्या के मुख के भाव देखकर मन ही मन मुस्करा रहा था । उसके कपोलों पर एक रंग आता और दूसरा जाता । अंत में आंचल को उंगलियों में लपेटते हुए वह बोली;

“आनन्द” !”

“हूँ”

“यह आप ने अच्छा नहीं किया ।”

“ओह ?” आनन्द ने गाड़ी रोकते कहा, “मैं तो भूल ही गया था ।”

“पर आप ने गाड़ी क्यों रोक दी है ?”

“इसलिये कि मेने यह अच्छा नहीं किया” तुम पीछे अकेली” और मैं”

“परन्तु मेरा आशय यह न था, वह” बात काटते हुए बोली । “मैं तो उस बात का कह रही थी जो आपने निशा के सम्मुख कह दी ।”

“बस इसी पर बिगड़ बैठीं।” आनन्द ने एक ठहाका लगाया और फिर बोला; “संध्या आगे आओ...”

“नही, यहीं ठीक हूँ...” वह गम्भीर मुद्रा में बोली।

“अब आ भी जाओ...” आनन्द ने उसे बांह से खींचते हुए कहा और कुछ हठ के पश्चात् उसे फ्रंट सीट पर अपने समीप बिठा लिया।

“परन्तु उसमें झूठ ही क्या था ?” आनन्द ने पुनः गाड़ी चलाते हुए कहा।

“झूठ हो या सच...पर यह रहस्य ही रहना चाहिये।”

“वह क्यों ?”

“इसलिये कि यह बात कहीं वायु में उड़कर ही न रह जाए।”

“तो तुम ऐसा भी सोचती हो ?”

“आप पुरुषों का क्या भरोसा...जब मन चाहा बोरिया बिस्तर समेटा और चल दिए।”

“इसमें हमारा क्या दोष...यदि किसी सराय में आराम और सुख न मिले तो यात्री बिचारे के पास उपाय ही क्या रह जाता है ?”

“यदि किसी का हृदय ही अशांत हो तो सराय की सुविधायें उसे क्या सुख देंगी। सराय से मन का उठ जाना वहाँ के कष्टों पर नहीं वरन् किसी सुन्दर विश्राम-घर की चमक दमक पर निर्भर है।”

“ओह...तो आज आप हमें निरुत्तर ही करके छोड़ेंगी...लो मैं ने हार मानी।”

“परन्तु इस हार में तो आप ही की जीत छिपी है।”

बातों-बातों में दोनों समुद्र तट पर पहुँच गये। आनन्द ने गाड़ी एक ओर लगा दी और संध्या को खींच पानी की ओर ले चला। दोनों के हृदय सागर की उठती तरंगों के समान उल्लास से उछल रहे थे।

संध्या सैण्डल उतार कर साड़ी को घुटनों तक उठा पानी में उतर गई और संकेत से आनन्द को अपने समीप बुलाने लगी। उसके न आने पर स्वयं खींच कर उसे लहरों में ले आई। आनन्द चिल्लाया...

उसकी पतलून और जूते सब भीग गये परन्तु संध्या ने एक न मुनी ।

पानी की एक बड़ी उछाल आई और दोनों को मिर से पाँव तक भिगो गई । दोनों एक दूसरे को थामे मौन खड़े थे । मानों उछाल के उतार के साथ ही यौवन का उत्साह बह गया हो । संध्या ने शरीर से चिपके हुए कपड़ों को ठीक करने का व्यर्थ प्रयत्न किया और धीरे-धीरे पाँव उठाती तट की ओर बढ़ी । तट पर बिछे एक बेंच पर बंठ कर वे अपने कपड़ों को निचोड़ने लगे ।

“घर वाले पूछेंगे तो क्या कहूँगी ?” संध्या ने दृष्टि नीचे किये हुए पूछा ।

“कह देना समुद्र मे कूदी थी ।”

“किस लिये ?”

“शरीर में ज्वाला जो भडक रही थी...फायर ब्रिगेड नहीं तां समुद्र ही सही ।”

“चलिये हटिए...आप को मजाक सूझ रहा है...मेरे तो भय से प्राण निकले जा रहे हैं ।”

“प्रेम का दूसरा नाम ही तो उपहास है ।”

“तो आप प्रेम की पवित्र भावना को उपहास समझते हैं ?”

“मे तो नहीं...वैसे है यह कुछ ऐसी ही वस्तु...कुछ व्यक्ति तो इसे स्वर्ग-जाल भी बोलते हैं ।”

“तो जाईये, छली कहीं के ।” संध्या मुंह फेरते बोली ।

“बस ब्रिगडेन लगी...यदि बात-बात पर यूँ बिगड़ोगी तो जीवन क्योंकर कटेगा ?”

“रोते चिल्लाते और कभी मार पिटाई में भी” संध्या ने उसी मुद्रा मे उत्तर दिया ।

“तब तो खूब कटेगी, घर में रेडियो की भी आवश्यकता न होगी ।”

“रेडियो तो एक ओर, रसोई घर में बरतन भी संग देगे ।”

“अति सुन्दर ! पड़ोसी सिनेमा तक जाना छोड़ देंगे और हमारी आय बढ़ेगी ।”

“क्या इस नाटक पर टिकट लगेगा ?”

“क्यों नहीं... किसी के बाबा के नौकर हैं जो दिन रात यह खेल मुफ्त दिखाएंगे ।”

“बाबा के नौकर !! धंधा तो इतना पसार रहे हो पर हम दोनों करेंगे क्या-क्या ?”

“सच ही है स्त्रियों की बुद्धि चुटिया में होती है... वह जो चार छः नन्हे मुन्ने होंगे वह किस काम आएंगे ?”

यह सुनते ही संध्या खिलखिला कर हंस पड़ी और उसके साथ ही आनन्द भी । बातों-बातों में दोनों कहाँ पहुँच गये थे । इन बातों में उन्हें कितना आनन्द मिल रहा था ।

“संध्या !” आनन्द ने उसके कंधे को धीरे से छूते कहा ।

“हूँ !”

“यदि आज तुम हंस न देती” तो मैं हारने वाला न था ।”

“वह तो अच्छा रहा... जीत मेरी रही... देखिए ! वह क्या है ?”

“नील कंठ... बहुत सुन्दर पक्षी है... क्या यह इस पेड़ से उड़ा ?”

“जी... न जाने यहां कब से बैठा हमारी बातें सुन रहा था ।”

“तो क्या हुआ... मूक पक्षी... किसी से कहेगा थोड़े ही ।”

“संसार वालों से तो नहीं, परन्तु इन्द्रलोक में हमारे प्रेम की वरचा तो अवश्य करेगा ।”

“संध्या ! एक बात कहूँ ।”

“कहिए...”

“आज से हम अपने प्रेम को ‘नील कंठ’ की संज्ञा देते हैं ।”

“और हाँ... जीवन में हम ने यदि कभी कोई मकान बनाया तो उसका नाम भी नीलकंठ ही रखेंगे ।”

“तो अब स्त्रियों की बुद्धि भी दूर तक सोचने लगी।” और फिर दोनों हँस पड़े।

दोनों की दृष्टि समुद्र की तरंगों पर पड़ी जो अब शांत हो चुकी थीं और दूर किसी मछिरे का आशा भरा गीत सुन रही थीं जो तट की ओर नाव खेता बढ़े आ रहा था। संध्या आनन्द का सहारा लेकर उठी और दोनों आ कर गाड़ी में बैठ गये।

संध्या जब घर पहुँची तो अंधेरा हो चुका था। वह भीगी बिल्ली के समान दबे पाँव सब की दृष्टि से बचती अपने कमरे की ओर बढ़ी। जैसे ही उसने किवाड़ खोलने को हाथ बढ़ाया किसी का स्वर सुनकर वह कांप गई। यह मालकिन थी जो इतनी देर से आने का कारण पूछ रही थी।

“ममी जरा निशा के घर देरी हो गई।” संध्या ने धीमे स्वर में उत्तर दिया।

“तुम तो भीग रही हो... क्या बाहर वर्षा हो रही है?”

“हाँ ममी मार्ग में इतनी जोर से वर्षा आ गई कि...” पर ममी को मुस्कराते देखकर वह चुप हो गई।

“जान पड़ता है कि आज मेरी ब्रिटिया झूठ बोल रही है।”

“तो मैं ने कब कहा यह सब सच है।”

संध्या की बात सुन मालकिन की हँसी छूट गई। उसे देखकर संध्या भी हँस पड़ी और अपनी बांहें उसके गले में डालकर बोली,

“माँ, मेरी अच्छी माँ... तू बुरा तो नहीं मान गई... आज आनन्द बाबू के संग गई थी समुद्र तट पर... वह हठ पूर्वक मुझे संग ले गये थे... मैं तो चलकर ही जा रही थी परन्तु उन्होंने नई कार का पट खोल दिया... अब ऐसे में करती भी क्या मैं, ममी!” संध्या कहते-कहते मौन हो गई। उसने देखा ममी उसकी बातों से अधिक उसके चेहरे को ध्यानपूर्वक देख रही है। संध्या लजा कर अलग हो गई और बोली,

“मैं मूर्ख भी जाने क्या बके जा रही हूँ।”

“अच्छा जा अब शीघ्र कपड़े बदल ले कहीं सर्दी न लग जाए ।”

“अच्छा ममी, पापा से तो...” संध्या ने प्रार्थना पूर्वक दृष्टि से मालकिन की ओर देखते हुए कहा ।

“हाँ, हाँ... कुछ न कहूँगी... पर अभी से इतना मेल जोल रखना उचित नहीं ।”

संध्या ने स्वीकारात्मक ढंग से सिर हिलाया और भीतर चली गई । द्वार बन्द करते ही उसने ममी के पैरों की आहट सुनने के लिये कान द्वार से लगा दिए और तत्पश्चात् चिटखनी चढ़ा कर सामने दर्पण में अपना रूप निहारने लगी ।

बिखरे बाल, भीगे कपड़े, होठों पर चंचल मुसकान और आँखों में किसी के प्यार की लौ... वया दशा हो रही थी... स्वयं ही वह लज्जा गई और भट दर्पण से मुख मोड़ उसने कपड़ों की अलमारी खोली... ज्यों ही उसने भीगी साड़ी शरीर से हटानी चाही किसी के स्वर ने उसे चौंका दिया ।

“जरा बत्ती तो बन्द कर ली होती ।” यह रेनु थी जो एक ओर बैठी पढ़ रही थी । संध्या उसे देखते ही बोली,

“दुष्ट कहीं की... मेरे तो प्राण सुखा दिये तू ने... मैं समझी न जाने कौन है ।”

“मेरा वया दोष दीदी ? कपड़े बदलने से पहले देख तो लिया होता ।”

संध्या को उसके भोलेपन पर हँसी आ गई और हाथ बढ़ा कर उसने बत्ती बुझा दी । चारों ओर अंधेरा छा गया... संध्या ने तौलिये से गीला शरीर पोंछते हुए कहा, रेनु ।”

“हाँ दीदी !”

“यदि कोई तुम्हें इस अंधेरे में पढ़ने को बहे तो वया तुम पढ़ लोगी ?”

“दीदी तुम भी कैसी बातें करती हो, तुम ही कहो तुम्हें कुछ दिखाई देता है क्या ?”

“हाँ रेनु, कमरे की प्रत्येक वस्तु ...तुम...तुम्हारी पुस्तकें...वह मेज पर रखे फूल...”

“बस बस...मैं समझ गई ।”

“क्या ?” संध्या ने बजाऊँ के बटन बंद करते हुए पूछा ।

“तुम अवश्य किसी अन्य स्थान का प्रकाश चुरा लाई हो जिससे यह सब तुम्हें दिखाई दे रहा है ।”

“तुम ठीक कहती हो रेनु ।” संध्या ने उजाला करते हुए कहा ।

उजाला होते ही कमरा जगमगा उठा और रेनु संध्या की ओर देखती ही रह गई । उसकी दीदी रात्रि की काली साड़ी में यों दिखाई दे रही थी मानो काले बादलों में चाँद । दोनों मौन भाव से एक दूसरे को निहारने लगीं ।

मालकिन के स्वर ने दोनों की शान्ति भंग कर दी और दोनों बाहर जाने को बढ़ीं...कदाचित्त भोजन के लिए उनकी प्रीक्षा हो रही थी ।

रेनु डाकिये के हाथ से तार का लिफाफा लेकर बाग के प्लेटफार्म की ओर दौड़ी, जहाँ राय साहब मालकिन और संध्या बैठे शाम की चाय पी रहे थे। रेनु के हाथ में लिफाफा देखकर संध्या ने पूछा "कौन आया है?"

"पोस्ट-मैन... पापा का तार आया है," लिफाफा पापा के हाथ में थमाते रेनु एक ही साँस में सब कह गई।

सब की दृष्टि राय साहिब के मुख पर जम गई, जो तार देखकर पीला पड़ चुका था। तार पढ़ते ही उनके मुख पर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। और उसके साथ ही सब का रुका साँस चलने लगा। मालकिन ने भट पूछा;

'किस का है?'

"बेला का... कल साँभ की गाड़ी से आ रही है;" तार संध्या के हाथ में देते हुये राय साहिब ने प्लेट से एक लड्डू उठा कर मुँह में डाल लिया। रेनु तो यह सुनकर नाचने ही लगी, "धल मेरी दीदी आएगी" और नाचते-नाचते पड़ोस में चली गई।

बेला संध्या से छोटी तथा रेनु से बड़ी थी। राय साहिब जब दिल्ली से बदल कर बम्बई आए तो उन्हें बेला को विवश होकर होस्टल में छोड़ना पड़ा। बी० ए० का अन्तिम वर्ष था और बम्बई विद्यालय की पढ़ाई दिल्ली से बिल्कुल भिन्न थी। कल वह परीक्षा समाप्त होने के पश्चात पहली बार बम्बई आ रही थी।

सायंकाल जब आनन्द उनके यहाँ आया तो रेनु ने सर्व प्रथम उसे यही समाचार सुनाया ।

आनन्द ने बातों ही बातों में संध्या से पूछा; “कैसी है तुम्हारी छोटी बहिन ?”

“जैसे हमारी नई गाड़ी...” संध्या ने दबरी मुस्कान में उत्तर दिया ।

“वाह यह गाड़ी व बेला की तुलना अनोखी है”

“तो देख लेना ...जैसे हमारी गाड़ी Latest model की है... वैसी ही मेरी बहना...फ्रैशन में तो सारे कालेज में ‘प्रथम’ है ।”

“तब तो परीक्षा में भी ‘प्रथम’ आएगी ।”

आनन्द की बात सुनकर संध्या की हँसी छूट गई । आनन्द ने धीमे स्वर में कहा, “जान पड़ता है कि बेला से तुम्हें कुछ डाह है !”

“भला वह क्यों ?”

“इस लिये कि उसके उतहास में तुम्हें आनन्द आता है ।”

“मैं तो आप के कहने के ढंग पर हँस पड़ी...वरना आप ही कहें क्या कोई अपनी बहन से ईर्ष्या करता है, और फिर वह भी छोटी बहन से !”

“कल कौन सा दूर है...सब प्रकट हो जाएगा और हाँ तुम तो स्टेशन जाओगी न ?”

“और आप भी...;” रेनु यह कहते हुए उनकी ओर बढ़ी, जो शायद खड़ी उनकी बातें सुन रही थी । दोनों ने मुड़कर उसे देखा । दोनों को अपनी ओर अपलक यूँ देखते हुये रेनु फिर बोली ।

“हाँ, आप को भी जाना होगा...पापा कह रहे हैं...हमारी बेला नईगाड़ी में घर आएगी ।”

“तो मेरा इसमें क्या काम है ?” आनन्द रेनु की चुटकी लेते बोला ।

“ड्राईवर के बिना गाड़ी कैसे चलेगी ?” यह कहते हुए रेनु भाग गई ।

“चल नटखट कहीं की,” कहकर संध्या ने उसे पकड़ने का विफल प्रयत्न किया। और दोनों हँस पड़े।

फिर दूसरी साँझ संध्या तथा आनन्द को ही स्टेशन पर जाना पड़ा। राय साहिब अफिस में काम की अधिकता के कारण समय पर न पहुँच सके और मालकिन वैसे ही बाहर जाने से कतराती थीं।

स्टेशन पर पहुँचकर आनन्द ने मोटर की चाबी निकालते हुए पूछा,

“परन्तु संध्या...!”

“हूँ...!”

“जब बेला पूछेगी कि मैं कौन हूँ तो क्या कहोगी?”

‘हमारा ड्राईवर,’ संध्या होठों पर एक चपल मुसकान लाते हुए बोली।

‘सुन्दर ! कुछ समय हास परिहास ही रहेगा’, शीघ्रता से दोनों पूछताछ कार्यालय की खिड़की पर पहुँचे और आनन्द ने दिल्ली एक्सप्रेस के आने का समय पूछा;

“वह तो आ चुकी।”

“कब?”

“अभी अभी।”

संध्या तीव्रता से भीतर भागी। आनन्द रुककर भीतर से निकलने वाले यात्रियों को ध्यान पूर्वक देखने लगा। आने वाली हर युवती उसे बेला ही जान पड़ती। परन्तु उनके संग किसी को देखकर हर बार उसे अपना अनुमान बदलना पड़ता। इतने में उसकी दृष्टि दूर प्लेटफार्म पर खड़ी संध्या पर पड़ी जो कुली से सामान उठवा रही थी। पास ही पीठ किये एक लड़की शलवार-कमीज पहिने उससे बातें कर रही थी।

‘तो बेला आ गई, आनन्द के शरीर में सिहरन सी दौड़ गई। वह धीरे-धीरे पाँव बढ़ाता कार की ओर बढ़ा ! इस विचार से कि बेला उसे ड्राईवर समझेगी उसके माथे पर स्वेद बिन्दु झलक उठे। अभी वह

यह सोच ही रहा था कि किसी की आहट ने उसे चौंका दिया। वे दोनों निकट आ पहुँचो थीं। बेला से आँखें चार होते ही वह स्तब्ध सा रह गया।

आधुनिक फ़ैशन की युवती...आलौकिक सौन्दर्य, जिसकी एक दृष्टि ही देखने वालों को बेसुध बनाने के लिये पर्याप्त हो। बेला का अछूता माधुर्य एक ही झलक में बिजली की भांति उसे चकाचौंध सा कर गया।

दोनों ने एक दूसरे को देखा और क्षण भर के लिये देखते ही रह गये। कुली ने सामान मोटर के पीछे रखा। बेला और सन्ध्या मुस्कराती हुई पीछे की सीट पर बैठ गईं। बेला तो इस गाड़ी को देखकर फूजी न समा रही थी। जब गाड़ी पार्किंग स्टैण्ड से उतर कर पक्की सड़क पर आई तो बेला ने धीमे स्वर में पूछा —

‘परन्तु दीदी ! आप कौन ?’

‘ओह... हमारा ड्राइवर...’

‘क्या कहा... ड्राइवर...?’ बेला आश्चर्य से उसे देखते बोली।

‘हाँ ! इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है ?’

‘कुछ नहीं...यूँ ही...’ बेला खिलखिला के हँसने लगी और फिर हँसते हुए बोली; ‘दीदी, पापा ने गाड़ी तो गाड़ी ड्राइवर भी लेटेस्ट मॉडल (Latest model) का रखा है।

सन्ध्या उसकी यह बात सुन तनिक घबरा सी गई। कहीं आनन्द बुरा न मान जाये...कहीं यह उपहास...बेला फिर से कहने लगी,

‘और हाँ दीदी, यह ड्राइवर कुछ अनाड़ी सा ज्ञात होता है; देखो न मय से बिचारे का पसीना छूट रहा है।’

‘यह क्या कह रही हो ?’

‘हाँ, देखो न सामने दर्पण में ...रंग पीला और माथे पर पसीना...’

संध्या ने सामने लगे दर्पण में देखा आनन्द की दशा सच ही ऐसी थी। उसी क्षण आनन्द ने रूमाल से पसीना पोंछ लिया।

गाड़ी रुकते ही बेला बाहर निकली। ममी, पापा और रेनु पहले से ही उनके आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। बेला भागकर पापा से लिपट गई। उन्हें छोड़ जैसे ही वह ममी से गले मिल रही थी उसने संध्या तथा आनन्द को गाड़ी से अपना सूटकेस उतारते देखा। बेला भट से बोली:—

“दीदी ! रहने दो... ड्राईवर स्वयं ही रख लेगा...”

“ड्राईवर !...” आश्चर्य से राय साहिब के मुख से निकला।

“मेरा आशय...” बेला कहते-कहते रुक गई। संध्या उसे मौन रहने को संकेत कर रही थी। समय की कठिनाई का अनुमान लगाकर वह उसकी बात काटते बोली;

“पापा, बेला शायद इससे अनजान है कि अभी तक हमारे पास ड्राईवर नहीं है।”

“इसीलिये आज आनन्द साहिब को कष्ट उठाना पड़ा।” राय साहिब कृतज्ञतापूर्वक आनन्द की ओर देखकर बोले।

“आप तो मुझे लज्जित कर रहे हैं। भला यह भी कोई बड़ा कार्य था।”

“ओह ! आप मिस्टर आनन्द...” विस्फुरित नेत्रों से देखते हुए बेला ने कम्पित स्वर में कहा।

“बया संध्या ने इनके विषय में तुमसे कुछ नहीं कहा। यह मिस्टर आनन्द हैं... जनरल मोटर कम्पनी के मैनेजर... और यह गाड़ी भी इनकी ही रुचि की है।”

“ओह ! नमस्ते ! दीदी ने तो मुझे कुछ और ही बताया था।”

इस बात पर सब हँस दिये, बेला और आनन्द संध्या की ठिठोनी पर और राय साहिब और मालकिन इस बात पर कि बिचारी संध्या कहती भी तो बया ?... आनन्द मेरा कौन है ? दृष्टि नीचे किये संध्या

भेंपर भीतर चली गई और चाय का प्रबन्ध करने लगी। पापा ने बेला को मुँह हाथ धोकर शीघ्र निबटने को कहा और स्वयं चाय की मेज पर आये। आनन्द ने गाड़ी गैरज में रखने की अनुमति लेकर उसे गैरज में बन्द कर दिया।

जब उसने गैरज से निकलकर बैठक में प्रवेश किया सामने खड़ी बेला उसे देख मुस्कराकर बोली;

“आप बुरा तो नहीं मान गये ?”

“किस बात का ?” आनन्द ने उसी भाव में कहा।

“मेरी अशिष्टता का...”

“इसमें आपका क्या दोष;” आनन्द बात पूरी करते बोला। “यह शरारत तो संध्या की थी।”

इस पर दोनों मुस्करा दिये।

बेला अपने सूटकेस को बार-बार खोलने का प्रयत्न कर रही थी। आनन्द ने उसे प्रत्येक बार विफल होते देखकर आगे बढ़ एक ही भटके में ताला खोल दिया। बेला ने मुस्कराकर उसे धन्यवाद दिया।

“आप दिल्ली में किस कालिज में पढ़ती थीं ?”

“लेडी ईरविन...और वह भी होस्टल में।”

“ओह ! तो आपको होस्टल का जीवन अति प्रिय है।”

“जी ! वह जीवन ही कुछ और है।” बेला को यह कहते हुए उन दिनों की स्मृति ताज़ी हो आई। आनन्द उसकी पतली-पतली कोमल उँगलियों को देख रहा था जो सूटकेस में से एक हल्के हरे रंग की साड़ी खींच रही थीं।

खोई सी दशा में जैसे ही बेला ने साड़ी खींची कुछ पत्र-पत्रिकायें बाहर आ गिरीं। इससे पहले कि बेला उन्हें उठाती आनन्द ने उन्हें उठा लिया और उनके नाम पढ़ने लगा...“फ़िल्म इण्डिया, फ़ैशन एण्ड ब्यूटी और फ़ोटो प्ले...खूब रुचि पाई है।”

“छोड़िये ! पापा चाय के लिये आपकी प्रतीक्षा कर रहे है,” बेला ने पत्रिकाएं अपने हाथ में लेते हुए कहा । आनन्द मुस्कराते हुए उठा और लम्बे लम्बे डग भरता खाने वाले कमरे की ओर बढ़ गया ।

बेला उसे जाते हुए देखती रही...आनन्द...उसके मधुर सपनों की व्याख्या...उसके अंधेरे आकाश में चमकता हुआ तारा...वह सहसा गम्भीर हो गई...कहीं मुझसे पहले दीदी ने तो इसके मन में स्थान नहीं पा लिया...परन्तु दीदी...लज्जा और संकोच की प्रतिमा...।

“तुम अभी तक यहीं हो !” संध्या के स्वर ने उसे चौंका दिया ।

“अभी आई दीदी...तुम चाय आरम्भ करो” बाथरूम की ओर जाते बेला बोली ।

चाय पीते समय मेज पर बैठे हुए बेला और आनन्द की दृष्टि बार-बार मिल जाती । आनन्द रोमान्चित हो उठता और बेला मुस्करा देती । जब भी वह छिपी दृष्टि से संध्या को देखता कि कहीं वह यह सब देख तो नहीं रही तो वहां भी होठों पर मुस्कान ही पाता ।

दोनों बहनों के होठों पर मुस्कान खेल रही थी अन्तर केवल इतना था कि एक मुस्कान चंचल थी—विजली की भाँति कौधने वाली, दूसरी सौम्य और शान्त फूलों पर फैली ज्योतस्ना की भाँति । आनन्द बैठा मन ही मन दोनों की तुलना कर रहा था । बेला की आँखों में मादकता और संध्या के नयनों में संकोच—कितनी भिन्नता थी दोनों में—एक ज्वाला थी और दूसरी ओस—एक ओर उठती घटायें और दूसरी ओर रिम-भिम फुहार—एक गरजता भरना थी और दूसरी शान्त निर्मल स्रोत । कल्पना के सागर में डूबा आनन्द यह भी भूल गया कि वह सबके साथ बैठा चाय पी रहा है । सबकी दृष्टि उसी पर लगी हुई थी । राय साहिब मौन तोड़ते बोले;

“संध्या...!”

“हाँ पापा....”

सब राय साहिब की ओर देखने लगे ।

“आनन्द की चाय का प्याला खाली हो गया है और तुम्हें ज्ञात नहीं।”

“ओह !...” संध्या लजा गई।

आनन्द अभी कुछ कह भी न पाया था कि संध्या ने केतली की ओर हाथ बढ़ाया। बेला ने उसे रोक दिया और केतली स्वयं उठाते बोली;

“संध्या के हाथों की बनी चाय तो बहुत पी चुके। यदि अनुचित न हो तो यह प्याला मे बना दूँ।”

“क्यों नहीं...क्यों नहीं...” सबने एक साथ कहा।

बेला जब चाय डाल रही थी आनन्द की दृष्टि बार-बार बेला पर जा पड़ती। गर्म चाय से निकलता हुआ धुआँ बेला के केशों में ऐसे विलीन हो रहा था जैसे श्वेत बदली काली घटाओं में समा रही हो।

आनन्द के चले जाने के उपरान्त दोनों बहने अपने कमरे में चली आईं। यात्रा की थकान के कारण बेला तो कम्बल ओढ़ कर लेट गई, किन्तु संध्या उसके समीप ही बैठकर स्वेटर बुनने लगी।

“दीदी...” बेला ने करवट लेकर पुकारा।

“हाँ बेला !”

“यह आनन्द साहिब क्या यहाँ प्रतिदिन आते हैं ?”

“नहीं तो।”

“सप्ताह में एक-दो बार ?”

“वह भी नहीं...”

“तो कभी-कभी आ निकलते हैं।”

“नहीं तो...वह तो यही रहते हैं।”

“कहाँ ?” बेला विस्मय से कुछ ऊपर उठते बोली।

“इस घर के प्रत्येक व्यक्ति के मन में।”

“हट...जा।” वह एक दीर्घ निःश्वास लेते फिर लेट गई।

“मे भूठ थोड़े ही बह रही हूँ; तुम्ही बहो क्या तुम्हारे मन नहीं भाये ।”

“मन भाये !”... बेला ने यह कहते लाज से मुंह सिरहाने में छिपा लिया । दो क्षण मौन रहने के पश्चात् बोली,

“नहीं... ।”

“वह क्यों ?”

“रुचि अपनी-अपनी ।”

बेला ने कंबल ओढ़ लिया, और अंधेरे में मुंह छिपा कल्पना में आनन्द के चित्र बनाने लगी । आनन्द की भेंट ने उसके मन में हलचल मचा दी थी । चुपचाप पास लेटी बेला को देखते संध्या सोचने लगी कि बेला ने भूठ कहा था । यदि आनन्द उसे भाया नहीं तो वह उसके विषय में पूछती ही क्यों । संभव है ममी ने बेला को आते ही सब कुछ बता दिया हो और वह केवल उसे छेड़ने को कह रही हो । इस विचार से संध्या मन ही मन मुस्करा उठी । करती भी क्या, व्यक्ति का जीवन बालू की अट्टालिका और आशा पर ही तो निर्भर है ।

अगले दिन सायंकाल बेला बाथ-रूम में खड़ी नल पर हाथ धो रही थी कि अकस्मात् उसकी दृष्टि बाहर फाटक पर पड़ी जिसे आनन्द भीतर से बन्द कर रहा था । उसे देखते ही उसके होंठों पर की गंभीरता मुस्कान में परिवर्तित हो गई और वह शीघ्र हाथों पर से साबुन उतारने लगी । सहसा उसके हाथ रुक गये और वह उन्हें नल के नीचे ही रखे बाहर की ओर एकटक देखने लगी । संध्या आनन्द का अभिवादन कर रही थी । आनन्द ने उसकी चुटकी ली और दोनों मुस्कराते हुए भीतर आ गये । बेला ने अनुभव किया कि किसी अज्ञात भावना ने उस पर अधिकार कर लिया है । सहसा उसे विचार आया क्या दीदी और आनन्द को एक साथ देखकर वह ईर्ष्या करने लगी है । यह विचार आते ही वह मुस्करा दी ।

‘यदि दीदी उससे ऐसे संबन्ध रख सकती है तो भला मुझे कौन रोकेगा । मुझे देख कर भी तो आनन्द के होंठों पर मुस्कराहट आ जाती है और फिर मैं दीदी से अधिक सुन्दर भी हूँ । यदि दीदी उसके मन पर अधिकार कर सकती है तो क्या मैं उसके मन में प्रेम की आग नहीं लगा सकती । ऐसे ही विचित्र और असंगत विचार बार-बार बेला के मस्तिष्क में चक्कर काटते दीदी को आनन्द के समीप देख कर उसका मन भी आनन्द में खेलने को चाहता । वह भी यह चाहती कि कालिज की मीठी बातें सुना कर उसके साथ हूँसे । परन्तु क्या दीदी उसे इसका अवसर देगी भी ? यह विचार आते ही वह मन ही मन मुस्करा दी ।

ज्यों ही वह अपने कमरे की ओर जाने को मुड़ी आनन्द के शब्दों ने उसके पाँव रोक दिये । “हेलो बेबी···।” आनन्द ने बेला को देखकर मुस्कराते हुए कहा ।

“हेलो मिस्टर ड्राइवर···” बेला ने अंतिम शब्द पर दबाव देते हुए उत्तर दिया ।

“बेला ···!” संध्या ने एक कड़ी दृष्टि से बेला को देखते कहा ।

“क्यों दीदी···क्रोध क्यों···यह तो मैं हूँसी में कह रही थी” बेला झट से बोली ।

“हूँसी नहीं यह अशिष्टता है । बड़ों को सदैव आदर से संबोधित करते हैं ।”

“ओह ! अब समझी···” जब संध्या दूसरे कमरे में चली गई तो बेला ने एक लम्बी साँस खींची और तिरछी दृष्टि आनन्द पर डालते हुए उसके पास आकर बोली, “बालकों की भूल तो बड़े सदा क्षमा कर देते हैं ।”

“भूल···कैसी भूल···” आनन्द घबराहट में बोला ।

“आप क्यों कांपने लगे···भूल तो मुझ से हुई ।”

“कौनसी ?” आनन्द ने अपनी घबराहट मुस्कान में छिपाते हुए कहा ।

“आप को ड्राईवर जो कह दिया ।”

“ओह ! इसमें क्या हुआ ? जैसे बेबी...वैसे ड्राईवर ।”

“दीदी को तो न जाने क्यों मेरी कोई बात भाती ही नहीं ।”

“दीदी जो ठहरी...बड़े छोटों को डाँटने-डपटने का अधिकार रखते ही हैं ।”

इस पर दोनों हँस दिये । बेला हँसी रोकते हुए बोली,

“चलिए अब...आप तो यहीं जम कर रह गये ...”

“ओह मैं तो भूल ही गया...हमें विलम्ब हो रही है ।”

“कहाँ के लिये...?”

“मैं और संध्या थियेटर जा रहे हैं...”

“यदि बुरा न समझें तो मैं भी चलूँ...”

“तुम ! हां हां...किन्तु पापा से पूछ लो ।”

“आप घबराइये नहीं... मैं कोई उनकी सौतेली बेटी हूँ...” बेला उछलती हुई बाहर जाने को बढ़ी परन्तु एकाएक ही रुक गई । आनन्द पाँव उठाते हुए उसके निकट आ गया । वह चंचल भाव में बोली, “मैं आपके संग चलूँ...यह आप मन से कह रहे हैं क्या ?”

“हां तो...भला तुम्हें संग ले जाने को किसका मन न चाहेगा ।”

बेला अपनी प्रशंसा मुन फूली न समाई और सीढियाँ चढ़ती अपने कमरे की ओर भागी । वहाँ संध्या पहले से ही तैयारी में लगी थी । बेला ने भी भट अलमारी खोली और कोई अच्छी सी साड़ी टटोलने लगी । संध्या ने आश्चर्य से पूछा—

“बेला ...कहाँ की तैयारी ?”

“थियेटर...आनन्द साहब संग ले जा रहे हैं...क्यों दीदी चलूँ मैं भी ?”

“नहीं ।”

“क्यों ?”

“पापा तुम्हें जाने न देगे ।”

“तो क्या तुम चोरी से जा रही हो ?”

“कुछ ऐसा ही समझ लो ।”

“वाह ! तुम्हारे संग कौन जा रहा है...में तो आनन्द” • बेला कहते-कहते रुक गई । संध्या जा चुकी थी । बेला ने शीघ्र नई साड़ी पहिनी और बालों में रिबन लगाते नीचे उतर आई ।

आनन्द और संध्या राय साहिब के पास खड़े कदाचित् जाने की अनुमति ले रहे थे । बेला भी उनके पाम जा खड़ी हुई और प्रार्थना भरे स्वर में बोली,

“में भी जाऊँ...पापा ।”

“नही ..!” राय साहिब ने तनिक कठोर स्वर में कहा । बेला ने आशा पूर्ण दृष्टि से आनन्द की ओर देखा जो उससे आँखें न मिला सका और राय साहिब से बोला,

“जाने दीजिए...टिकट तो मिल ही जाएगा ।”

“नहीं ऐसी कोई बात नहीं...आप जाइये...इसे अध्ययन करना है ..इन बातों के लिए बड़ा समय पड़ा है ।”

राय साहिब का यह दृढ निश्चय देखकर दोनों चुपचाप चले गए । बेला जल भुन कर रह गई ।

अपने कमरे में लौट कर उसने क्रोध में कपड़े बदले और पुस्तक ले बिस्तर में बैठ गई । खाने के लिये नौकर बुलाने आया तो उसे डाँट कर भगा दिया । बैटी को मनाने जब ममी आई तो किवाड़ ही बन्द कर दिया और जब पापा का स्वर सुनाई दिया तो बत्ती बुझा लेट गई । पापा ने एक दो बार पुकारा किन्तु वह मौन रही । जब सब हार कर चले गये तो अंधेरे में अकेली लेटी बेला कल्पना में आनन्द के चित्र बनाने लगी । उन सुनहरे मपनों में खोई बेला की न जाने कब आँख लग गई ।

बाहर किसी धमाके से उसकी नीद खुल गई । अंधेरे में घूमती हुई उसकी दृष्टि जब एकाएक सामने दूसरे पलंग पर पड़ी तो उसने उसे खाली पाया...तो क्या संध्या अभी तक नहीं लौटी ? किन्तु, वह भीतर आती

ही कैसे ? किवाड़ तो अंदर से बन्द था ।' बेला ने उसी क्षण हाथ बढ़ाया और बत्ती जला दी... कमरे में और कोई न था ।

घड़ी रात के ग्यारह बजा रही थी । बेला पलंग से उठी । उसने द्वार खोल बाहर भाँका । पापा के कमरे से छन के आते हुए उजाले से उसने अनुमान लगाया कि वह अभी सोये नहीं ।

धीरे से दबे पाँव वह सीढ़ियाँ उतर गई और बाथ रूम की ओर चल दी । जैसे ही उसने बत्ती जलाने को हाथ बढ़ाया वह सिहर उठी । उस की दृष्टि द्वार के शीशों से बाग में बिछे सीमेण्ट की बेंच पर पड़ी । आनन्द व संध्या एक दूसरे के आलिगन में बंधे थे । छिटकी चाँदनी में दो यौवन मदमातों को यूँ देख बेला को रोमाँच हो आया और कुछ ही क्षणों में ज्वाला भड़कने लगी । 'आखिर दीदी को इतनी स्वतंत्रता क्यों ? तो क्या दीदी आनन्द से प्रेम करती है..... ? और मेरा उनके साथ जाना उनकी स्वतंत्रता में बाधा थी । सबको तो शिक्षा देती है किन्तु स्वयं तो.....'

और न जाने यूँ ही कितने प्रश्न उसके मस्तिष्क में मँडराने लगे । किन्तु, प्रत्येक प्रश्न उसके हृदय-गटल पर द्वेष की एक गहरी रेखा अंकित कर गया ।

जैसे ही आनन्द ने संध्या के होठों को छुआ बेला के शरीर में फुरेरी सी दौड़ गई और उसने आँखें बंद कर ली । उसने भी अपने होठों पर जलते अंगार अनुभव किये । कुछ समय पश्चात् जब उसने अपनी आँखें खोलीं तो देखा वे दोनों बेंच छोड़कर द्वार की ओर बढ़े आ रहे थे । बेला दबे पाँव अंधेरे में छिप गई ।

“तो अब जाऊँ क्या ?” आनन्द ने संध्या का हाथ छोड़ते हुए कहा ।

“मन तो नहीं चाहता परन्तु.....”

“परन्तु आप का जाना ही उचित है ।” आनन्द बात पूरी करते बोला ।

दोनों की एक हलकी सी हँसी इस सन्नाटे में गूँज गई...दो विवश हृदयों का विवश संसार...कितना उल्लास है इसमें...मन में इन्हीं विचारों को लिये संध्या भीतर गई।

आनंद शीघ्रता से पाँव बढ़ाता अपनी मोटर की ओर लपका। आज वह अति प्रसन्न था। गाड़ी में बैठते ही उसने सीट पर रखे फूल को उठाया जो कुछ समय पूर्व संध्या के बालों में था। उसने फूल को सूँघते हुए गाड़ी स्टार्ट कर दी।

कुछ क्षण पश्चात् उसे मोटर में लगे दर्पण में किसी लड़की की छाया दृष्टिगोचर हुई। काल्पनिक संध्या की इस प्रकार दर्पण में छाया देख वह मुस्करा उठा। तुरन्त ही चौंक कर उसने गाड़ी को ब्रेक लगा दी और विस्मय पूर्वक दर्पण की छाया को देखने लगा। आनंद ने भट से भीतर उजाला किया और मुड़कर पिछली सीट पर बैठा देखने लगा। बेला उसे देख मुस्करा रही थी। आनंद आश्चर्य चकित उसे देख ही रहा था कि वह बोल उठी।

“चकित क्यों है...मैं हूँ बेला...”

“परन्तु यहाँ कैसे...कब...?”

“सोचा थियेटर तो सग ले नहीं गये, मोटर मे तो ले ही चलेंगे।”

“बावली तो नही हो गई...इतनी रात गये कोई देखने तो।”

“तो क्या ? बेला अथवा संध्या में कोई अन्तर नहीं।”

“ओह ! अब समझा...”

“क्या ?”

“दीदी तुम्हें थियेटर नही ले गई ना...इसी से तुम रूठी हुई हो।”

“नही तो...यह अनुमान आपने कैसे लगाया ?”

“मेरा आशय है...उसकी इच्छा...तुम्हारी ही दीदी है इसमें मेरा क्या दोष।”

आनंद के इस उत्तर पर बेला हंसने लगी और बोली।

“यह आप इतने चिन्तित क्यों हैं... मेने कोई उलाहाना तो नहीं दिया ।”

‘तो फिर...’

“अपना अधिकार... बड़ों के पश्चात् छोटे...”

“कैसे ? मैं समझा नहीं ।”

“अब मेरी बारी है घूमने की ।”

“बेला ! देखो बालपन मत करो... आधी रात को घूमना ! जाओ घर... वचन देता हूँ कल अवश्य साथ चलूँगा ।”

“तो वचन देते हैं आप ?”

“हाँ भई... अब देर न करो... गाड़ी से उतरो...”

“तो आप को मेरी बात भी माननी होगी...”

“क्या... ?”

बेला मुस्कराई और अगली सीट पर आ गई । अभी आनंद असमंजस में ही था कि उसने अपनी बाहे उसके गले में डाल दीं ।

“एक बार मुझे भी बाहुपाश में ऐसे ही बाँध लो जैसे दीदी को ।”

“बेला ! सुध खो बैठी हो क्या ?”

“नहीं । बल्कि आपको सुध में लाना चाहती हूँ ।”

आनंद उलझन में पड़ गया कि क्या करे । फिर बोला ।

“यदि मैं तुम्हारी यह प्रार्थना न मानूँ तो...”

“तो मुझे यह रैन गाड़ी में बितानी होगी ।”

“तो मुझे जाकर राय साहिब को सूचित करना पड़ेगा ।”

“आप अवश्य जा सकते हैं ।” बेला ने उदण्डता से उत्तर दिया ।

आनंद उसका यह दृढ़ और चंचलता देख असमंजस में पड़ गया । अन्त में हार कर उसे यह विलक्षण निश्चय स्वीकार करना ही पड़ा । कुछ क्षणों के लिये वे एक दूसरे में लीन हो गये... तीव्रता से चलता श्वास... और धक्का हुआ शरीर... जब वे अलग हुए तो आनंद ने

यूँ अनुभव किया मानो वह कोई एक झटके से बसे स्वर्ग से नर्क में फेंका गया हो। जब वह कुछ मभला तो बेला मोटर से नीचे खड़ी उन्माद पूर्ण नयनों से उसकी ओर देख रही थी।

“एक बात पूछूँ ?” बेला ने चंचलता से पूछा।

“हूँ।”

“वह थियेटर अच्छा था अथवा यह नाटक।”

“वह थियेटर।” आनंद ने धीरे से कहा और मोटर स्टार्ट करदी— चलते-चलते उसने बेला की ओर देखा। वह क्रोध से लाल हो रही थी। वह कुछ दूर तक दर्पण में मे उसे देखा किया।

बेला अपने छोटे से नाटक की मराहना न पाकर चुपचाप उदास खड़ी थी।

आनंद ने सोचा जीवन के किसी मोड़ पर कभी कभार ऐसी घटनाओं का सामना करना ही पड़ता है उसकी हंसी छूट गई।

“साहिब ! आप से कोई मिलने आया है ।” चपड़ासी ने भीतर प्रवेश करते हुए कहा ।

“कोन है ?” आनंद ने हाथ बढ़ाया ।

“कार्ड नहीं दिया, कोई महिला है ।”

“कोई गाड़ी के विषय में, या····”

“केवल आप से मिलना चाहती हैं ।”

“अच्छा, भीतर भेज दो ।”

चपड़ासी के बाहर जाते ही बेला भीतर आ गई ।

“बेला····तुम ।” आनंद आवाक् सा उसे देखता ही रह गया । आज प्रथम बार वह उसके कार्यालय में आई थी और वह भी अकेली ही ।

“क्या बैठ सकती हूँ ?” बेला ने कुर्सी खींचते पूछा ।

“क्यों नहीं····क्या अकेली आई हो ?”

“जी····घर में अकेले बैठे मन न लगा सोचा आप ही से मिल जाऊँ ।”

“तब मुझे तुम्हें धन्यवाद कहना चाहिये ।”

“भला वह क्यों ?”

“इतने बड़े संसार में मन बहलाने को मुझ पर जो दृष्टि पड़ी ।”

दोनों एक साथ हंसने लगे । दोनों की आँखों में एक विचित्र भलक थी जिसके प्रतिबिम्ब में वह दृश्य छिपा था जब एक रात उन्होंने निकट

से एक दूसरे के हृदय की धड़कन सुनी थी। एक आकर्षण था जो दोनों को एक दूसरे के समीप ला रहा था।

बातों ही बातों में बेला ने शोरूम देखने की इच्छा प्रगट की। आनंद कुर्सी छोड़ते हुए बोला,

“सेल्ज मैन के नाते हर गाड़ी की विशेषता पर भाषण तो देना ही होगा किन्तु परिश्रम व्यर्थ जायेगा।”

“वह क्यों?”

“गाड़ी तो लेनी नहीं तुम्हें...!”

“यदि ले लूँ तो...” कुछ क्षण मौन रहने के पश्चात् बेला ने कहा।

“कब?”

“अपने विवाह के पश्चात्...”

“ओह!...” आनंद होंठ सिकोड़ते बोला; “तो क्या तुम्हें विश्वास है कि तुम्हारे समुराल वाले धनी होंगे?”

“इसमें संदेह ही क्या है...माता-पिता व्याह देख भालकर ही तो करेंगे...यूँ ही किसी पथिक के साथ पल्लू थोड़ा बाँध देंगे...अब तो समय बदल गया है।”

“बेला! समय तो चाहे बदल जाये किन्तु भाग्य नहीं बदल सकता।”

“तो आप भी इन बातों में विश्वास करते हैं?”

“करना ही पड़ता है...अच्छा छोड़ो...क्या विषय छेड़ दिया... आओ तुम्हें मोटरें दिखाऊँ।”

आनन्द बेला को बारी-बारी से रूम की सब गाड़ियाँ दिखाने लगा। बेला किसी गाड़ी का हार्न बजाकर, किसी के स्टेरिंग पर बैठकर किसी की सीट पर उछलती मुस्कराती अपने मन का उल्लास प्रगट कर रही थी।

स्टूडी बेकर की एक गाड़ी में बैठकर बेला ने आनन्द का हाथ खींचते कहा, “मुझे तो यह गाड़ी अति प्रिय है।”

“तो खरीद लो” आनन्द ने खिड़की के निकट मुंह ले जाते कहा।

“यदि लेने वाले के पास इस समय पैसे न हों तो....”

“तो अपनी कोई बहुमूल्य वस्तु गिरवी रख दे....”

“परन्तु उसका मूल्य पाने वाला जीहरी कहाँ मिलेगा ?”

“हम भी तो सुनें वह रत्न है कौनसा ?”

“मेरा हृदय....”

बेला की यह बात सुन आनन्द खिलखिला कर हँसने लगा। थोड़े समय के लिये वह भूल गया कि वह वहाँ का मैनेजर है। फिर उसने धीमे स्वर में बेला से कहा;

“जो हृदय एक गाड़ी के लिये गिरवी रखने को तैयार हो जानती हो उसकी निजी वास्तविकता क्या है ?”....बेला ने उत्सुकता पूर्वक ऊपर देखा।....

“एक छकड़ा जो समय की गति में चलते-चलते बेकाम हो चुका है....”

बेला यह उत्तर पाकर जलभुन गई। यह व्यंग उसके मन को छलनी कर गया, पर वह क्रोध को पी गई। आनन्द उसके मुख पर उद्विग्नता के चिन्ह देखकर मुस्करा पड़ा और उसे खींचते हुए अपने कमरे की ओर ले गया।

थोड़े समय पश्चात् दोनों आफिस में बैठे चाय पी रहे थे। बेला की दृष्टि में अब वह पहले की सी चंचलता और नटखटता न थी। अब वह गम्भीर मुद्रा में थी। अपने सौंदर्य और हाव-भाव से वह चाहे उसके शरीर में एक फुरहरी सी भर देती किन्तु बातों में उसे पराजय न कर पाई।

जब इन्हीं बातों में बेला ने मोटर चलाना सीखने की अभिलाषा स्पष्ट की तो आनन्द ने खंडाला से लौट कर सिखलाने का वचन दिया।

“खंडाला !...वहां क्या है ?”

“माता पिता...नगर के जीवन से दूर पर्वतों की घाटी में...”

“क्या करते हैं उस उजाड़ में वे ?”

“खंडाला के छोटे से स्टेशन पर स्टेशन मास्टर ।”

“सुना है सैर सपाटे के लिये सुन्दर स्थान है ।”

“बहुत सुन्दर...बेला, कहने को तो बम्बई और खंडाला में केवल अस्सी मील का अन्तर है परन्तु वहाँ जा कर यूँ अनुभव होता है मानो कोई बम्बई से सैकड़ों मील दूर आ गया हो ।”

“काश ! मैं भी यह देख सकती...”

“इतनी निराशा क्यों...वचन दिया, तुम्हें भी एक बार ले चलूँगा ।

“कब ?”

“कुछ समय प्रतीक्षा करनी पड़ेगी । कहते हैं प्रतीक्षा में बड़ा आनन्द है ।”

बेला आनन्द के इस संकेत को न समझ पाई । उसने कुछ और ही समझा । किन्तु आनन्द का मन तो दूर कहीं खंडाला की घाटियों में विचर रहा था, जहाँ वह और संध्या प्रेम की आँख मिचौनी खेल रहे होंगे और बेला थकी उदास सी मुंह लटकाये उनकी टोह में पीछे-पीछे आ रही होगी...साली जो ठहरी...‘साली’ का विचार आते ही वह मुस्कराने लगा और फिर एक-एक ही चौक उठा...उसके विचारों की लड़ी टूट गई...बेला उसे पिन चुभो रही थी ।

जब बेला जाने लगी तो आनन्द ने खंडाला जाने के विषय में संध्या से न कहने की मनाही कर दी ।

“वह किस लिये ?”

“तुम नहीं समझोगी...प्रतीक्षा में बड़ा आनन्द है ।’

“क्या ?”

“इसे रहस्य ही रहने दो ।”

“जाना कब है आपको ?”

“कल सायंकाल...पूना एक्सप्रेस से।”

“और लौटेंगे कब ?”

“सोमवार को...”

बेला के घर पहुंचने पर संध्या ने विलम्ब का कारण पूछा तो उसने किसी सहेली के यहाँ का बहाना बनाकर टाल दिया। उसके मन की छिपी गुदगुदी और उसकी आँखें स्पष्ट कर रही थी कि वह झूठ कह रही है। संध्या ने उससे अधिक प्रश्न पूछना उचित न समझा।

बेला सीधी अपने कमरे में चली गई। उसे विश्वास था कि आनन्द इस भेंट के विषय में संध्या से कुछ न कहेगा नहीं तो वह उसे खंडाला जाने के विषय में दीदी से न कहने को कभी न कहता।

साँभ की अन्तिम डाक में एक पत्र बेला का भी था जिसे पढ़ते ही प्रसन्नता से वह उछल पड़ी। उसकी सहेली कान्ती का व्याहृ था और उसे पूना जाना होगा - दो दिन पश्चात...पर...खंडाला—वह भी तो पूना के मार्ग में ही है...पूना एक्सप्रेस...क्या ही अच्छा हो कि वह भी कल सायंकाल की गाड़ी पकड़ ले...आनन्द का संग रहेगा।

वह भागी-भागी पापा के पास गई और उनके गले में बाँहें डाल प्यार जताने लगी। राय साहिब बेटी का आशय समझ गये...अवश्य किसी बात की अनुमति चाहिये...“सिनेमा”... “ऊँ हैं” —“कोई साड़ी लेनी है ?” —“ऊँ हैं” —“तो फिर क्या ?”

“पापा मुझे पूना जाना है...और कल साँभ ही...” यह कहते ही कान्ती का पत्र उसने उनके सम्मुख रख दिया। अपनी डाक अभी तक न खोली थी। गुलाबी रंग के लिफाफे को उन्होंने फाड़ा और पढ़ने लगे। यह कान्ती के पिता का निमंत्रण पत्र था जिसमें सबको आने की प्रार्थना की गई थी। उनका जाना तो सम्भव न था, किन्तु बेला का जाना उन्हें अनुचित न जान पड़ा। वह बेला से बोले,

“व्याह तो सोमवार का है—इतवार प्रातः काल चली जाना...”

“नहीं पापा कल सायंकाल की गाड़ी ठीक रहेगी...एक दो दिन तो पहले ही जाना चाहिये।”

“परन्तु सायंकाल की गाड़ी में जाना उचित नहीं...पूना रात गये पहुँचती है।”

“तो क्या हुआ?”

“रात को अकेले वहाँ जाना ठीक नहीं...प्रातःकाल की गाड़ी से चली जाओ दोपहर तक पहुँच जाओगी।”

बेला ने लाख वहाँ बनाये कभी तैयारी का कभी बाजार से कुछ लाने का इत्यादि...पर पापा के सामने एक न चली और विवश होकर उसे प्रातःकाल की गाड़ी में जाना ही स्वीकार करना पड़ा। उसका मस्तिष्क इसी उभलन में था कि आनन्द के संग जाने का कोई साधन बन जाये।

रात को जब बेला अपने कमरे में बैठी जाने के लिये वस्त्र सम्भाल रही था तो धीरे में संध्या भीतर आई और एक पत्रिका ले अपने पलंग पर जा बैठी। कुछ क्षण का निस्सन्ध्या के पश्चात् बेला ने पुकारा,

“दीदी!”

“हूँ...”

“मुझ से रुठी हुई हो क्या?”

“नहीं तो...”

“फिर इतनी चुप क्यों हो?”

“उदास हो रही हूँ...” संध्या वनते हुए बोली।

“आनन्द बाबू नहीं आये इस लिये?”

“पगली...तुम्हारे मुँह में तो हर समय उन्हीं का नाम रहता है, मेरी उदासी का कारण वह नहीं तुम हो।”

“मैं—क्यों?”

“जा रही हो जो...मुझे अकेला छोड़ के।”

“आना-अपना भाग्य ..दीदी, मैं तुम से कई बार कह चुकी हूँ कि यह चुप्पी, यह वड़पन, यह लजीली दृष्टि, क्या रखा है इन सब में, अपने जीवन को बनाने के लिये स्वयं साहस करना चाहिये, नहीं तो, नहीं तो.....”

“नहीं तो.....क्या ?”

“अब तक तुम्हारा विवाह हो चुका होता ।”

“तो ब्याह ही जीवन में एक ऐसी वस्तु है जो किसी को प्रसन्न रख सकती है !”

“क्यों नहीं.....ब्याह का दूसरा नाम है स्वतन्त्रता ।”

“अथवा पुरुषों की दासता....”

“यह केवल तुम जैसी संकोचशील देवियों के लिए.....हम स्वतन्त्र तितलियों के लिये नहीं ।”

“बेला ! क्या होस्टल में भी तुम सदैव ऐसी ही नटखट थीं ।”

“यह तो कुछ भी नहीं दीदी, वहाँ तो होस्टल की हीरोइन थी ।”

“कभी जाने क्यों तुम से भय लगता है ।”

“भय ! क्यों ?”

“ब्याह में जा रही हो.....वहाँ भी यदि यही चंचलता रही तो कोई तुम पर मर न मिटे ।”

“परन्तु, उसके मर मिटने से पहले ही मैं उसे सूचित कर दूँगी ।”

“क्या....?”

“अभी मेरा पासपोर्ट नहीं बना.....मेरी बड़ी बहिन अविवाहित है ।”

बेला की इस बात पर वह हँसते-सँसते लोट-पोट हो गई और बोली,

“तुम्हारे इन्हीं हाव-भाव से तो मुझे डर लगता है ।”

“और मैं भी तो तुम से डरती हूँ ।”

“क्यों ?”

“कहीं जीवन पथ पर ऐसे ही बैठी सोचती रहें तो मैं कहीं आगे न निकल जाऊँ ।”

“घबराओ नहीं...दौड़ने वाले प्रायः गिरा करते हैं ।”

“और मंद चाल वाले....।”

“आगे निकल जाते हैं ।”

“तुम ठीक कहती हो दीदी...मैं चाहे दौड़ूँ चाहे कूदूँ प्रथम ब्याह तुम्हारी ही होगा ।” दोनों की हँसी से कमरा गूँज उठा । संध्या विस्मित थी कि बेला पर यह ब्याह का भूत क्यों सवार है....कदाचित्त इसलिए कि उसकी सखी का ब्याह है ।

दूसरे दिन प्रातःकाल विवश होकर बेला को पूना मेल पकड़नी पड़ी । मालकिन और संध्या उसे छोड़ने स्टेशन पर गईं । निशा भी संध्या के संग थी ।

जब गाड़ी ने प्लेटफार्म छोड़ा, ममी और दीदी रुमाल हिला कर बेला को विदा कर रही थी, उसकी आँखों में आनन्द का चित्र घूम रहा था जो उसी सांभ इसी प्लेटफार्म पर कि ी को चलती हुई गाड़ी में से देखने को व्याकुल होगा । परन्तु, वह बिचारा यह न जान पाएगा कि उसकी आँखे जिसकी खोज में हैं वह उससे पहले ही यात्रा आरम्भ कर चुकी है ।

ज्यों-ज्यों गाड़ी की गति तीव्र होती गई त्यों-त्यों बेला का मानसिक असमन्वजस भी बढ़ता गया । उसके मस्तिष्क में यह विचार रह रहकर आता—क्या ही अच्छा होता यदि वे दोनों एक साथ ही यात्रा करते... आनन्द ने उसके जीवन स्रोत में एक हलचल उत्पन्न कर दी थी ।

जैसे ही गाड़ी कल्याण स्टेशन पर पहुँची बेला को एक युक्ति सूझी....उसने कुली को पुकारा और सामान गाड़ी से नीचे उतार लिया ।

गाड़ी चली गई और वह उसे अपनी भावना में डूबी देखने लगी...

यदि मन किसी से मिलने को व्याकुल हो तो यह विवशता कैसी ?... यह विचार आने पर उसने कुली को सामान उठाने का संकेत किया और बेटिंग-रूम की ओर बढ़ी ।

“देखिए ! पूना एक्सप्रेस कब मिलेगी ?” उसने प्लेट फार्म पर घूमते एक टी० टी० से पूछा ।

“सांभ को पाँच बजे...” टी० टी० ने आश्चर्य से उस आधुनिक तितली को उत्तर दिया जो अभी ही पूना जाने वाली गाड़ी से उतरी थी ।

“प्रतीक्षा में भी आनन्द है...” आनन्द के मुँह से निकला हुआ यह वाक्य ही बेला की प्रतीक्षा की घड़ियाँ बिताने में सहायता दे रहा था । रह-रहकर उसकी दृष्टि ने प्लेट फार्म पर लगी घड़ी की सूइयों को देखा जो कदाचित आज उसकी व्याकुलता को समझ मंद गति से चल रही थी ।

न जाने कितनी बार उसने स्टेशन वालों से पूना एक्सप्रेस का समय पूछा परन्तु इतने बड़े स्टेशन पर उसे कोई भी ऐसा न मिला जो उसे पाँच से कम कह दे ।

एक प्रश्न पर तो वह स्वयं लज्जित हुई... न ज ने किस विचार में खोई वह एक बूढ़े सिगनल मैन से पूछ बैठी, “क्या कभी ऐसा भी हुआ है कि गाड़ी पाँच बजे से पहले आ गई हो ।” बूढ़े ने नाक मुकोड़ते उत्तर दिया,

“देवी जी, यह सरकार की गाड़ी है किसी मनचले युवक का छकड़ा नहीं जो भट आपकी सेवा में उपस्थित हो जाए ।”

छकड़ा...।” उसने बूढ़े की बात का बुरा न माना... प्रश्न तो उसका अपना ही बेढंगा था... और फिर इस शब्द ने उसे स्मृति दिला दी... आनंद ने भी तो उसके हृदय का मूल्य एक छकड़ा रखा था ।... “क्या कभी ऐसा भी हो सकता है कि आनन्द अपना मन थामे उसके पाँव में हो और वह उसका मूल्य पूछे... स्टूडी बेकर अथवा छकड़ा...।”

घड़ी ने तीन बजाये और बेला ने संतोष की एक लंबी सांस खींची... उसकी प्रतीक्षा के केवल दो घंटे शेष थे। अब उसे भूख सता रही थी। वेटींग रूप से निकल वह टी—स्टाल पर गई और चाय पीने लगी। इसके पश्चात्... फिल्मी पत्रिकायें और फिर प्लेट फार्म पर इधर उधर घूमना... समय तो आखिर बिताना ही था।

पाँच बज गए और बेला का हृदय उल्लास से उछलने लगा। वह सामान कुली के पास छोड़ पृच्छ ताछ की खिड़की की ओर बढ़ी। उसकी आशाएँ एक ही उत्तर पर बुलबुले के समान मिट गईं। गाड़ी दो घण्टे लेट थी। बम्बई और कल्याण के मध्य एकाएकी अधिक वर्षा हो जाने से पटरियों में पानी भर गया था अतः गाड़ी को अपनी गति बहुत कम करनी पड़ी।

वर्षा को भी आज ही आना था... बेला झुँझला उठी और क्रोध भरी दृष्टि से आकाश पर बिखरे हुए बादल के उन टुकड़ों को देखने लगी जो एक दूसरे से गले मिल रहे थे। उनके मिलने में शांति नहीं बल्कि हलचल छिपी हुई थी। फैलते हुए अंधियारे में बिजली छिपी बैठी थी जो किसी समय भी कौध सकती थी। यही दशा इस समय बेला की थी।... हृदय में जलन... वहाँ भी एक बिजली छिपी हुई थी... सावन की उठती घटा की भाँति उसकी अभिलाषायें भी आज पूरे यौवन पर थीं। किन्तु कितना अन्तर था दोनों की उमड़ती मादकता में। बादल तो बरस कर अपना बोझ हल्का कर लेगे पर यह बाढ़ कहाँ जा कर रुकेगी जिसमें जल-कण के स्थान पर ज्वाला छिपी हुई है।

पूना एक्सप्रेस जब कल्याण पहुंची तो घटाएँ भरपूर यौवन में बरस रही थी। बेला ने अपनी कलाई घड़ी को देखा... पूरे सात... गाड़ी ठीक दो घण्टे लेट थी।

कुली को सामान के निकट रहने का आदेश दे वह स्वयं गाड़ी के डिब्बों को देखने लगी। उसके व्याकुल मुख पर मन्द मुसकान की रेखा खिंच गई... आनन्द एक दूसरे दर्जे के डिब्बे की खिड़की से बाहर भांक

रहा था। बेला एक स्तम्भ की ओट में हो गई और उसने कुली को सामान उस डिब्बे में रखने को कहा।

जब कुली सामान रखकर वापिस लौटा बेला ने उसकी हथेली पर एक रुपया रखकर पूछा ?

“कितने यात्री हैं डिब्बे में ?”

“एक बाबू साहब... वह भी अकेले।”

“हूँ...।”

“महिलाओं के डिब्बे में सामान लगा दूँ क्या ?”

“नहीं रहने दो।” बेला ने डिब्बे की खिडकी की ओर देखते हुए कहा जो अब बन्द हो चुकी थी... और धीरे-धीरे पग बढ़ाती डिब्बे की ओर बढ़ी।

जैसे ही पूना एक्सप्रेस ने कल्याण का स्टेशन छोड़ा वैसे ही बेला ने चुपके से डिब्बे में प्रवेश किया। आनन्द द्वार की ओर पीठ किये कोई पत्रिका देख रहा था। बेला ने किवाड़ बन्द कर चिटखनी लगा दी।

आहत पाते ही आनन्द ने पत्रिका छोड़ अपनी गरदन मोड़ी। बेला ने भट से मुंह मोड़ लिया और अपना सामान ठीक करने लगी। बेला सामने लगे दर्पण में आनन्द की छाया को देख रही थी जो आश्चर्य से अपने सह-यात्री को देखने में संलग्न था।

बेला भी उलझन में थी; आनन्द के समक्ष हो भी तो कैसे ? नयन चार होते ही क्या होगा... इस समय अकेली कल्याण में क्या कर रही थी... आनन्द की प्रतीक्षा... और यह सोचते ही वह सकुचा गई।

एकाएक उसे एक शरारत सूझी। उसने नीचे की सीट से अपना भारी-भरकम सूट-केस उठाया और उसे ऊपर की सीट पर रखने का व्यर्थ प्रयत्न करने लगी।

“छोड़िये... मे रखे देता हूँ...” सीट से उठते हुए आनन्द ने कहा।

“जी !...” जैसे कि यह कहते बेला ने पलट कर देखा... आनन्द भौंचक सा देखता ही रह गया... “बेला और यहाँ।” कुछ क्षण इसी दशा के पश्चात् वह बोला—

“बेला !... तुम यहाँ कैसे ?”

“बेला... ? धीमे स्वर में उसने कहा और फिर गम्भीर होकर बोली।”

“बेला...वह कौन है ?”

“बेला तुम !...पर वम्बई छोड़ अकेली यहाँ ?”

“आप कदाचित् भूल रहे हैं ।”

“भूल...कैसे...?” आनन्द ने सकपका कर दो पग पीछे हटते कहा ।

“अथवा मुझे अकेले देख ...”

“नहीं तो, किन्तु आप...”

“मेरा नाम बेला नहीं इन्द्रा है...कल्याण से पूना जा रही हूँ ।”

“ओह...” आनन्द विस्मित व्यग्र सा अपनी सीट पर जा बैठा । उसकी उन्मुख दृष्टि बार-बार बेला पर उठ जाती । “इतनी बड़ी भूल असम्भव है...बेला...इन्द्रा...यह क्या रहस्य है ?” जब कभी दोनों की दृष्टि मिल जाती आनन्द सिहर उठता ।

“किन्तु, आप मुझे यूँ बार-बार क्यों देख रहे हैं ।” आनन्द को अधीर देख बेला झुंझला कर बोली ।

“नहीं तो...कुछ समस्या ही ऐसी आन पड़ी है । सच बात तो यह है...कि...कि ...” कहते कहते आनन्द रुक गया और खिड़की से बाहर देखने लगा...जहाँ गहन-अंधकार को छोड़ कुछ न था ।

“कहिए न, चुन क्यों हो गये ?” बेला ने कहा ।

“मिस इन्द्रा...आपकी आकृति बिल्कुल बेला जैसी है । यदि आप उसे देखें तो समझेंगी कि स्वयं अपनी छाया ही दर्पण में देख रही हैं ।

“सच !” बेला अपनी सीट से उठी और आनन्द के समीप बैठते हुए बोली, “तो क्या यह सच है कि मेरी आकृति आप की बेला से मिलती है ।”

“जी !” आनन्द ने सिमटते हुए उत्तर दिया, “मुझे अभी तक विश्वास नहीं हो रहा कि आप वास्तव में इन्द्रा ही हैं ।”

“और मुझे भी विश्वास नहीं आ रहा कि आप यह सब सत्य कह रहे हैं अथवा मुझे अकेला देखकर बहका रहे हैं ।”

बेला का उत्तर मुन आनन्द जरा घबरा सा गया और फिर संभलते बोला,

“देखिए ! आप को ऐसे न सोचना चाहिये । हम इस यात्रा में अकेले अवश्य है किन्तु भय आप में अधिक मुझी को है ।”

“वह कैसे ?” बेला ने दृष्टि ऊपर उठाते पूछा ।

“इस लिये कि आप अपनी सीट छोड़कर मेरे निकट आने का प्रयत्न कर रही है...मे नहीं ।”

“ओह...मे समझी...” वह सीट से उठने का एक व्यर्थ प्रयत्न करते बोली ।

“मेरा आशय यह न था इससे ।”

बेला मुस्करा कर फिर वही बैठ गई । वह बार-बार दृष्टि उठा आनन्द के चिन्तित मुख को देख रही थी जो एक विचित्र उलझन में पड़ा था । थोड़ा समय चुप रहने के पश्चात् जब कोई न बोला तो बेला ने हाथ बढ़ा कर खिड़की का शीशा गिरा दिया ।

पानी के छींटों की बौछार बेला के मुँह पर पड़ी । आनन्द हटकर दूर बैठ गया और बेला से बोला,

“देखिए मिस साहिब...पानी सब भीतर आ रहा है ।”

“आप सामने की सीट पर बैठ सकते हैं ।”

“और आप...”

“मुझे पानी के छींटे बहुत प्रिय हैं ।” बेला अपने मुख को खिड़की के और समीप ले जाते बोली । पानी के छींटे उसके कपोलों पर जल-कण बन मोतियों के समान चमकने लगते । इस अनोखे खेल में वह आनन्द अनुभव कर रही थी । बौछार के पड़ते ही वह हँसने लगती । आनन्द को उसका यह बालपन अच्छा न लग रहा था । उसने दो एक बार उसे कुछ कहना भी चाहा किन्तु शब्द उसके मुँह तक आकर ही रुक गये ।

“एक बात पूछ सकती हूँ ?” कुछ समय पश्चात् बेला ने मीन को तोड़ते पूछा ।

“अवश्य ।” आनन्द ने अपनी सिहरन को छिपाते हुए उत्तर दिया ।

“तो आप ने कैसे जाना कि मैं कुमारी हूँ ।”

“तो क्या मेरा यह समझना भूल थी ।”

“सम्भव है ।”

“यदि आप इसे अशिष्ट न समझें तो मैं भी एक बात पूछ सकता हूँ ।”

“अवश्य ।” बेला ने उसी मुद्रा में उत्तर दिया ।

“आप के पति देव का शुभ नाम ।” आनन्द ने दबे से पूछा ।

‘कदाचित् आप भूल गये हैं कि हिन्दु स्त्रियाँ अपने पति का नाम नहीं लेतीं ।’

“ओह....तो आप भी इन रूढ़ बातों को मानती हैं ।”

“जी....किन्तु थोड़े परिवर्तन के साथ ।’

“वह कैसे ?”

“विवाह के पश्चात् तो नाम ले लेते हैं किन्तु उसके पहले नहीं ।”

“तो अभी केवल सगाई हुई है ?” आनन्द ने हँसते हुए कहा ।

“कुछ यूँ ही समझ लीजिये ।”

“किन्तु पता ठिकाना तो कोई होगा न !”

“बम्बई में किसी मोटर कम्पनी के मैनेजर हैं ।”

“मोटर कम्पनी के....” आनन्द ने आश्चर्य से बेला की ओर देख कर दोहराया जो एक चपल मुसकान से उसे देख रही थीं ।

“हाँ, हाँ मोटर कम्पनी के....जनरल मोटर कम्पनी के ।”

अपनी फर्म का नाम सुनते ही आनन्द सब बात समझ गया और चिल्ला, “बेला !” फिर अपनी ही भूल पर लज्जा सा गया । बेला उसकी सूरत और अपनी सफलता पर पागलों की भान्ति हँसने लगी ।

आनन्द ने लपक कर शीशा बन्द कर दिया और बेला के समीप हो कर बोला,

“परन्तु तुम यहाँ कैसे ?”

“आप ने वचन जो दिया था ।”

“वचन ...मेने !” आश्चर्य चकित आनन्द ने पूछा ।

“जी...खांडला दिखाने का...मे स्वयं ही चली आई...आपको बुरा तो नहीं लगा ।”

“ओह ! परन्तु इतनी शीघ्र...तुम...”

“शुभ कार्य मे विलम्ब कैसा...” बेला उसके और निकट आते बोली ।

“मे समझा...परन्तु; घर पर...”

“कह कर आई हैं... पर आप इस कदर घबराय हुए क्यों...?”

“नही तो...फिर भी आपकी बातों पर विश्वास नहीं आता...यह अकेले...”

‘हा, मिस्टर आनन्द...’ बेला एक लम्बी सांस लेते बोली, “आप मेरी बातों पर विश्वास क्यों करेंगे ...दीपक स्वयं पतंगे के पास चला आया ।”

“दीपक...पतंगा...यह...” आनन्द बेला का संकेत समझ कर घबरा सा गया ।

“एक कल्पना...कवि का एक व्यर्थ विचार...अच्छा छोड़िए इन बातों को...कहिये कल का क्या कार्य-क्रम है ?”

“कैसा कार्य-क्रम ?” आनन्द एक उलझन में पड़ गया ।

आनन्द का उतरा हुआ मुख देखकर बेला मुस्कराई और चंचल नयनों से कुछ क्षण उसकी ओर देखती रही । फिर उसे अपनी पूना जाने की सब बात सुना दी ।

आनन्द को जब यह ज्ञात हुआ कि बेला सीधे पूना नहीं जाना चाहती बल्कि इतवार का दिन उसके साथ खांडवा व्यतीत करना चाहती है तो वह बहुत घबराया । कही बेला के बालपन का दंड उसे न भुगताना पड़े...इस विचार ने उसे एक असमंजस में डाल दिया ।

वर्षा की बौछार और गाड़ी की तीव्र गति कल्पना में वही दृश्य प्रस्तुत कर रही थी जो आनन्द के हृदय की तेज धड़कन और बेला की मचलती हुई कामनायें... एक विचित्र उलभाव था दोनों में।

‘बेला रात कहाँ ठहरेगी’ यह प्रश्न बार-बार आनन्द की चिन्ता का बढ़ाने के लिये उसके मस्तिष्क के पर्दों से टकरा रहा था। उसके माता पिता पुराने विचारों के व्यक्ति थे। इतनी रात उसके संग इस आधुनिक तितली को देखकर वे कुछ और न समझ बैठें। अभी तो उसे उन्हें संध्या के लिये मनाना है। वह बड़ी उलझन में था कि क्या करे... उसने दो एक बार बेला को समझाते हुए कहा कि उसका पूना जाना ही उचित था किन्तु वह कहाँ मानने वाली थी... हठ और फिर यौवन का हठ, उसे तोड़ना कुछ सरल न था।

गाड़ी अपनी पूरी गति से दौड़े जा रही थी। आनन्द व्यग्र और मौन खिड़की से बाहर घनघोर घटाओं को देख रहा था और बेला उसके मुख को जिस पर चिन्ता की रेखाये स्पष्ट थीं। आनन्द कभी-कभी छिपी दृष्टि से बेला को देख लेता जो उत्तर में हलके से मुस्करा देती।

“आप बाहर क्या देख रहे हैं ?” बेला निस्तब्धता भंग करते बोली।

“इन उमड़ती हुई घटाओं को।”

“तो इधर भी देखिये !”

“कहाँ ? आनन्द विस्मित सा बोला।

“हमारी ओर... हमारे मन में भी तो तूफान उमड़ रहे है।”

“तूफान और तुम्हारे मन में... कैसा सुन्दर विचार है,” यह कहते ही वह जोर से हँसने लगा जैसे उसके इस विचार का उपहास कर रहा हो। बेला क्रोध को अपनी बेबस आँखों में छिपाने का प्रयत्न करने लगी जो आनन्द से इस समय हंसी का कारण पूछ रही थीं।

उसके भावों को भांपते हुए आनन्द बोला,

“बेला ! भंवर में फँसी नाव भी मन में तूफान रखती है—यह मैं आज ही समझ पाया ।”

यह कहते ही वह अपनी सीट छोड़ उसके समीप आ गया और उसके वालों में स्नेह से हाथ फेरने लगा जैसे किसी बालक को प्यार कर रहा हो । कुछ क्षण पश्चात दबे और अस्फुट शब्दों में बोला,

“मन में तूफान रखती हो या कामना……यह तो मैं नहीं जानता…… हाँ आँखों में वह बिजली अवश्य है जो घटा में छिपी रहती है ।”…… और तभी गाड़ी एक सुरंग में गुजरने लगी । अंधेरा होते ही बेला की एक हल्की सी चीख निकल गई और वह आनन्द में लिपट गई । घुप अंधेरे में गाड़ी की गड़गड़ाहट और इंजन की सीटी के गोर में दोनों के हृदय की धड़कन स्पष्ट सुनाई दे रही थी । गाड़ी के सुरंग से बाहर निकलते ही अंधेरे का स्थान उजाले ने ले लिया । आनन्द ने देखा वह सहमी सी अपने सिर को उसके वक्ष पर टिकाए है और स्वयं उसके हाथ बेला के कंधों को आश्रय दिये हुए हैं ।

ज्यों ही आनन्द ने अपने हाथ हटाये बेला ने उसकी उंगलियों को अपने हाथों में जकड़ लिया और धीमे से बोली,

‘ इस उजाले से तो अंधेरा ही अच्छा था ?’

“कैसे ?

“भूले से किसी को सहारा जो दे दिया ।”

इसके साथ ही वह प्यार से आनन्द का हाथ पकड़ उसकी उंगलियों को धीरे-धीरे दाँतों से काटने लगी । आनन्द मौन और चकित उसकी भावनाओं को देखे जा रहा था । उसने लड़कियों का यह साहस और हाव-भाव अंग्रेजी फ़िल्मों में तो देखा था, किन्तु अपने निजी जीवन में किसी युवती को यून भावना में आपे से बाहर होते आज ही देखा था ।

गाड़ी ने फिर एक सुरंग में प्रवेश किया—फिर अंधेरा छा गया और उसके साथ ही आनन्द के हृदय की धड़कन तेज हो गई । न जाने अबकी बार उसे यह अंधेरा क्यों डरा रहा था ।

ज्यों-ज्यों बेला उसके समीप हो रही थी उसके शरीर में सिहरन सी होने लगी....सुरंग अधिक लम्बी थी....घोर अंधेरे में बेला का शरीर आनन्द से यूँ आ लगता जैसे दहकते हुए अंगार। बेला ने फूले श्वास से दबे शब्दों में पुकारा, “आनन्द !”

“हूँ ।” आनन्द ने बन्द होंठों से ही उत्तर दिया ।

“फिर अंधेरा छा गया ।” बेला ने कंपित स्वर में कहा ।

“तो क्या हुआ ?”

“कहीं मैं इस घोर अंधेरे में डूब गई तो....”

“मेरा हाथ पकड़ लेना....आश्रय मिल जायेगा ।”

“क्या भरोसा ?”

“मेरा अथवा तुम्हारा....मुझे तो डर लग रहा है कि कहीं सहारा लेते-लेते मुझे भी न ले डूबो ।”

“हम तो डूबेंगे सनम तुम को भी ले डूबेंगे” यह तो आप ने सुना ही होगा ।”

“सुना तो है....देखा नहीं अभी तक ।”

“तो वह भी देख लोगे....” बेला ने चंचलता से उत्तर दिया । वह कुछ और कहने ही को थी कि उजाले की किरणों ने फिर से कमरे में प्रकाश कर दिया । गाड़ी की गति पहले से कुछ धीमी पड़ गई थी कदाचित कोई स्टेशन निकट आ रहा था । आनन्द ने अनुभव किया अंधेरे का सहारा ले बेला उसके अधिक समीप आ चुकी थी ।

आनन्द धीरे से उठकर परे जा बैठा । वह उसकी इस चेष्टा पर मुस्करा पड़ी और खिड़की खोल फिर से बरखा के छींटों का आनन्द प्राप्त करने लगी । आनन्द भी मौन बैठा उसे निहारने लगा । गाड़ी रुक गई । बेला ने बाहर भाँक कर देखा डिब्बा प्लेट फार्म से बाहर था और अंधेरे में प्रयत्न करने पर भी वह न जान सकी यह कौनसा स्टेशन है । उसने तीखी दृष्टि से आनन्द को देखते हुए पूछा,

“कितनी दूर है तुम्हारा खँडाला ?”

“जी...” खांडला का नाम सुनते ही वह सिर से पांव तक कांप उठा, मानो यह नाम लेकर किसी ने उसके मस्तिष्क पर हथौड़ा दे मारा हो। वह अपनी घबराहट को होठों की मुस्कान में गुम करते हुए बोला; “कदाचित् अगला स्टेशन है।” इंजन ने सीटी दी।

“कदाचित्...क्या आप विश्वास से नहीं कह सकते,” बेला ने खिडकी से बाहर प्लेटफार्म को देखते हुए पूछा जो अब पीछे छूट गया था।

“नहीं...मैं स्वयं कहाँ जा रहा हूँ...इसका भी विश्वास नहीं मुझे...”

इस उत्तर पर बेला खिलखिला कर हँस पड़ी और उसकी हँसी की गूँज रेल की गड़गड़ाहट में खो गई। गाड़ी सिगनल के पास पहुँचकर अपनी पुरानी गति पकड़ चुकी थी।

“जब अपने आप पर विश्वास उठ जाए तो जानते हैं क्या करना चाहिये?” बेला ने कुछ क्षण पश्चात् पूछा।

“क्या?” आनन्द होंठ सुकोड़ थोड़ा समय चुप रहकर बोला।

“किसी का आश्रय लिया जाता है कि ठोकर न लग जाए।”

“किन्तु इस बन में किसका आश्रय लूँ?”

“मेरा।” बेला ने दृढ़ता से कहा। आनन्द उत्तर में केवल मुस्करा दिया—जैसे उसकी दृष्टि बेला से यह प्रश्न कर रही हो...“आश्रय... और तुम्हारा.....एक पुरुष एक स्त्री का आश्रय ले...क्या व्यर्थ विचार है।”

डिब्बे में फिर अटूट चुप्पी छा गई जैसे दोनों के शब्दों का प्रवाह रुक सा गया हो। दोनों की दृष्टि आपस में टकराकर एक दूसरे के मन में हलचल सी उत्पन्न कर रही थी। बरखा की तूफानी रात...गरजन का शोर...और उसमें दो प्रेम-मय हृदयों की धड़कन का खो जाना... विचित्र वातावरण था...दोनों के मुख किसी चिन्ता को स्पष्ट करते-करते रंग बदल रहे थे।

बेला की आँखों में बिजली का सा प्रभाव था। उसने एक चंचल मुस्कान से आनन्द की ओर देखा और अपना मुख खिड़की से बाहर निकाल वर्षा के तेज छींटों के नीचे रख दिया।

आनन्द अपनी सीट से उठकर उसकी ओर बढ़ा और खींचकर उसे बाहूपाश में ले लिया। दोनों के होंठ मिले और शरीर में एक ज्वाला सी भड़क उठी। यह सब इतनी शीघ्र हुआ कि दोनों में से कोई न सोच सका कि यह क्या हो रहा है।

बेला ने संकोच से आँखें झुका लीं और अपना मुख आनन्द के वक्ष में छिपाने का प्रयत्न करने लगी।

गाड़ी ने फिर एक सुरंग में प्रवेश किया। अन्धेरा होते ही बेला फिर आनन्द से लिपट गई। आनन्द ने उँगलियों से उसके भीगे हुए बालों को निचोड़ते हुए कहा, “डर लग रहा है क्या?”

“हाँ...” उसके होंठ काँप रहे थे।

“मुझ से?”

“नहीं तो... इस अंधेरे से...”

“ओह... यह अन्तिम है।”

“क्या?”

“हमारे मार्ग की अन्धेरी सुरंग... खांडला आने को है।”

गाड़ी सुरंग से बाहर निकली तो खिड़की से हवा के तेज झोंको ने दोनों को सचेत कर दिया। दोनों ऋट से अलग हो गए। बेला के गम्भीर और चिन्तित मुख पर मुस्कान की हल्की सी एक रेखा दौड़ गई और वह भागते हुए ‘टाएलट’ (Toilet) का द्वार खोल भीतर चली गई... अपनी लज्जामयी दृष्टि को छिपाने के लिये जो अब आनन्द के सम्मुख उठने से भिन्नकती थी।

आनन्द ने अपना सामान सम्भालना आरम्भ कर दिया। बार-बार उसकी दृष्टि टायलट के बन्द द्वार तक जाकर लौट आती... बेला की

उपस्थिति को अनुभव करते ही वह किसी भय से कांप जाता...उसके मन में उठता हुआ तूफान अब बैठ रहा था ..शिथिल पड़ रहा था ।

एकाएक ही उसके मस्तिष्क के पदों पर सन्ध्या की एक धुंधली सी छाया स्पष्ट हुई जो उससे पूछ रही थी, 'खाँडला से कब लौटोगे ?' आनन्द का रोआँ-रोआँ कांप गया । उसके माथे पर स्वेद बिंदु फूट निकले और वह अपने आपको कोसने लगा...चन्द ही क्षणों में वह क्या मूर्खता कर बैठा...उसे उस ज्वाला के समीप न जाना चाहिए था जो उसे जलाकर राख कर दे ।

बेला एक ज्वाला ही तो है किन्तु उसकी जलन में कितना आनन्द मिलता है... संध्या से अति सुन्दर...उसके यौवन में उन्माद है...उसकी हर चेष्टा, उसका हर हाव भाव प्रभावित करता है...उसे देख मृत हृदय भी सजीव हो उठता है...फिर मैं तो स्वयं तरुण हूँ...स्वयं पागल नहीं हुआ, पहल उसी की थी...यदि किसी उन्माद के आधीन मैंने खींचकर उसे अपनी बाँहों में भर लिया तो कैसा दोष ?...मेरे स्थान पर कोई भी होता तो विपथ हो जाता...मैं तो फिर भी सुध में हूँ...।

“आप सचेत नहीं कदाचित्,” बेला के इन शब्दों ने आनन्द को चौंका दिया । उसने मुड़कर बेला को देखा था जो उसके सन्मुख खड़ी उसे देख रही थी । आनन्द को चिन्ता में खोया देख वह बोली, ‘मैंने कहा खाँडला आ गया ।’

“क्या...?” आनन्द ने अवाक् दृष्टि से पहले उसे देखा और फिर लपककर खिड़की से बाहर । गाड़ी रुक चुकी थी और सामने बोर्ड पर बड़े अक्षरों में लिखा था ‘खाँडला’...पढ़ते ही आनन्द की आँखें खुल गईं मानों किसी ने उसे स्वप्न से जगा दिया हो ।

आनन्द को यह देखकर सन्तोष हुआ कि उनका डिब्बा प्लेटफार्म से बाहर आ ठहरा था और बरखा के कारण स्टेशन पर उजाड़ था... स्टेशन तो सदा यूँ ही रहता था परन्तु आनन्द ने कभी यह उजाड़पन

अनुभव न किया था क्योंकि उसका बचपन इन्हीं पहाड़ियों में खेल कूद कर बीता था। वह शीघ्रता से सामान उतारने लगा।

सामने से गुजरते दीनू चौकीदार को आनन्द ने पुकारा जो आनन्द को देखते ही प्रसन्नता से उछल पड़ा और बोला; “छोटे...तुम कब आए...”

“अभी...” उसने मुस्कराते हुए उस गाड़ी की ओर देखा जो धीरे-धीरे प्लेटफार्म छोड़ रही थी। जब उसने दीनू को आश्चर्य से बेला को देखते देखा तो अपनी घबराहट छिपाते बोला, “पिता जी कहाँ हैं?”

“स्टेशन पर ही...ड्यूटी पर...”

आनन्द कुछ सोच कर डर गया...तो पिता जी आज ड्यूटी पर है...उसे बेला के संग यूँ देखकर वह क्या सोचेगा...और बेला से भी वह क्या कहे...वह तो न जाने अपनी हठ पर क्यों अड़ी हुई है...वह दीनू को थोड़ी दूर ले गया और अपनी विवशता की पूरी कथा उसे सुना दी। दीनू आनन्द के पिताजी के स्वभाव से परिचित था, जीवन के कई वर्ष उसने उन्हीं के साथ व्यतीत किए थे।

बेला दोनों को आपस में चोरी छिपे बातें करते देख मन ही मन मुस्करा रही थी। आनन्द बात समाप्त करके बेला के पास आया और बोला, “एक बात मानोगी?”

“कौन सी?”

“डरता हूँ कहीं बुरा न मान जाओ।”

“अच्छा मान भी गई तो आपका क्या...और फिर दूसरे के मन की दशा देखकर तो मैं बुरा भी न मानूँगी।”

“मनुष्य को होना भी ऐसे ही चाहिए...मेरा विचार है...” कहते-कहते आनन्द रुक गया।

“कहिये...कहिये रुक क्यों गये...आपके मन की बात तो मैं समझ गई...”

“क्या ?” आनन्द ने आश्चर्य से पूछा ।

“कि मेरा इस समय यूँ आपके घर जाना उचित नहीं ।”

“हाँ बेला.....इसीलिए.....”

“आपने सोचा है कि आज रात मैं वेटिंगरूम में ही व्यतीत कर दूँ ।”
बात काटते वह बोली ।

“तुम ठीक समझ गई.....”

“तो चलिए.....मैं तैयार हूँ ।”

“परन्तु अब नहीं.....पिता जी ड्यूटी पर हैं और वेटिंगरूम खुलवाने से पहले चाबी उन्हीं से लेनी होगी ।”

“तो क्या फिर मैं यहीं बैठी रहूँ ?”

“नहीं तो.....उस सामने वाले डिब्बे में बैठ जाओ.....वह रात भर यहीं रहेगा.....किसी सरकारी अफसर का है जो इस क्षेत्र का दौरा कर रहा है ।”

“और आप.....?”

“मैं पिता जी के जाते ही तुम्हारे पास आ जाऊँगा और चौकीदार से वेटिंगरूम खुलवाकर तुम्हारे आराम का पूरा प्रबन्ध करवा दूँगा.....अच्छा डरने की कोई बात नहीं.....चौकीदार तुम्हारा ध्यान रखेगा ।”

इस प्रकार आनन्द ने बेला को ठहरने पर सहमत कर लिया । वह भी प्रसन्न थी कि इतनी रात गए एक अनजाने घर में व्यर्थ प्रदनों की बौछार से बच गई । और फिर एकान्त में आनन्द भी तो उससे मिलने आयेगा.....यह सोच उसके मन में गुदगुदी होने लगी ।

बेला का सामान दीनू ने डिब्बे में लगा दिया । आनन्द के संकेत पर वह डिब्बे की ओर बढ़ी और चौकीदार के हाथ का सहारा लेकर ऊपर चढ़ गई ।

ज्योंही आनन्द अपना सूटकेस उठा प्लेटफार्म की ओर मुड़ा बेला ने बड़ीं सुकुमारता से कहा, “मुझे भूख लगी है.....”

“अभी प्रबन्ध किये देता हूँ...दीनू तुम मेरे साथ आओ।” यह कह कर आनन्द आगे चला गया। थोड़ी दूर जाकर उसने घूम कर देखा... बेला डिब्बे के द्वार से लगी उसे देखे जा रही थी। कदाचित् उसकी दृष्टि उस मार्ग की जाँच कर रही थी जिस पर आनन्द जा रहा था।

आनन्द को अचानक देख उसके पिता जी अति प्रसन्न हुए और उसे गले से लगा लिया। उनकी ड्यूटी लगभग एक घण्टे में समाप्त होने वाली थी और उन्होंने आनन्द को अपने साथ ही रुकने को कहा। किन्तु उसके मुख पर व्याकुलता के चिन्ह देख वह समझे कि माँ से मिलने के लिये बेचैन होगा। दो क्षण चुप रहने के पश्चात् बोले, “अच्छा, चलो मैं आ जाऊँगा...” डूबते को जैसे आशा की किरण मिल गई हो... वह तेजी से दीनू के संग हो लिया।

घर निकट ही था। ऊपर वाले कमरे की खिड़की से छन-छनकर आता उजाला यह बता रहा था कि माँ अभी सोई नहीं। वह लपककर भीतर आया और चुपके से माँ की आँखें अपनी हथेलियों से बन्द कर दीं। माँ पहले तो कुछ डर गई फिर उसके हाथों को उँगलियों से टटोलते बोली,

“कौन ? मेरा लाल ! मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रही थी।”

“तुम्हें कैसे ज्ञात हुआ कि मैं आ रहा हूँ।” दोनों हाथ माँ के कंधों पर रखते वह बोला।

“मेरा मन मुझसे कह रहा था...विश्वास न हो तो देख लो तुम्हारे लिये खाना भी रखा है।”

“ओह खाना...हाँ माँ मैं भूल ही गया था...शीघ्र किसी बरतन में खाना लगा दो...दीनू !” आनन्द ने खिड़की में से झाँककर नीचे खड़े दीनू को आवाज देते हुए कहा।

“परन्तु किसके लिये ? तुम्हारे बाबा तो खा गए...”

“उनके लिये नहीं” एक सहयोगी के लिये जो वेटिंगरूम में है... मेरा एक मित्र है।”

“तो उसे घर तक ही ले आते।”

“बहुत कहा पर वह नहीं माना।”

बाहर बादल की गरजन फिर सुनाई दी और माँ रसोईघर की ओर भागी। कहीं बरखा फिर आरम्भ न हो जाये और शीघ्रता से खाना परोसने लगी।

खाना लेकर आनन्द नीचे दीनू के पास गया किन्तु, उसके हाथों में वह खाना देते-देते रुक गया और फिर कुछ सोचकर बोला,

“दीनू, लाओ यह बरसाती मुझे उतार दो...”

“आपको ? किसलिये ?”

“खाना लेकर मैं स्वयं जाऊँगा... इस बरसाती में तो दूर से मुझे चौकीदार ही समझेंगे।”

“जी... कहीं बाबू जी ने दीनू समझकर पुकार लिया तो।”

‘तो... तो क्या... मुझे तो बाहर ही से जाना है... तुम चिन्ता न करो।’

दीनू ने भट से अपना बरसाती कोट उतार आनन्द को दे दिया — आनन्द ने बरसाती को इस ढंग से ओढ़ लिया कि कोई शंका न करे और बाहर से घूमकर प्लेटफार्म पर आया। काली घटायें स्टेशन पर एक घुंघ का पर्दा लिये हुए थीं जिसकी ओट लिये अपने आपको छिपाये आनन्द डिब्बे की ओर बढ़े जा रहा था।

बेला मार्ग पर दृष्टि बिछाये पहले से ही द्वार से लगी प्रतीक्षा में खड़ी थी। आनन्द ने मन ही मन उसे बनाने की सोची। उसने भी तो गाड़ी में उसे बनाया था। आनन्द ने अपने मुँह को गर्म मफलर से पूर्णतः ढाँप लिया जिससे आंखों के अतिरिक्त सब कुछ छिप गया।

उसके डिब्बे के निकट पहुँचने पर बेला नीचे उतरी और उसके हाथों से खाना ले ऊपर चढ़ गई। आनन्द भी उसके पीछे-पीछे ऊपर आ

गया। बेला ने टिफिन खोल खाना सीट पर लगा लिया और उसकी ओर असावधानी से देखते बोली, “अब तुम जाओ...में खा लूँगी।

“माँ जी ने कहा है बरतन साथ वापिस लाना।” आनन्द ने भारी स्वर में उत्तर दिया।

“अच्छा...लो यह गिलास...नल से पानी ले आओ...”

आनन्द आज्ञा पालन के लिए उठा और गिलास लेकर नीचे उतर गया। बेला उसे नीचे जाते देख एकाएक ही काँप-सी गई और फिर ध्यान पूर्वक देख मुस्करा पड़ी। जो रहस्य आनन्द उससे छिपाना चाहता था वह उसके नये सफेद जूते और रेशमी जुराबें न छिपा सकीं।

आनन्द जब पानी लेकर लौटा तो बेला फिर गम्भीर हो गई जैसे वह अभी तक उसे चौकीदार ही समझ रही हो। खाने खाते वह कई बार कनखियों से भाँक कर आनन्द को भाँक कर देख लेती जो मफलर में से टिकटिकी लगाये उसे देखे जा रहा था। च में बीबेला ने उसे सम्बोधित करते पूछा—“क्या भूख लगी है?”

“नहीं तो...” वह काँप सा गया।

“तो फिर मुझे यूँ क्यों देखे जा रहे हो?”

आनन्द निरुत्तर हो गया और अपनी घबराहट छिपाने के लिए खिड़की के शीशे से खेलने लगा। बेला ग्रास को मुँह में रखते फिर बोली, “मफलर से ढका सिर और मुँह...उसमें दो मोटी-मोटी आँखें...जानते हो कैसे लग रहे हो?”

“कैसे...” जैसे आनन्द की मौन और विस्मित दृष्टि ने पूछा—

“उ...ल्लू...” बेला मुस्कराते हुए आनन्द से बोली जो यह शब्द सुनते ही तड़प कर रह गया पर किसी कारण से चुप रहने पर विवश था। अभी तक वह छिपी दृष्टि से बेला को देखे जा रहा था।

खाना खाने के पश्चात् बेला ने टिफिन बन्द किया और सामने की सीट पर आ बैठा। आनन्द ने टिफिन उठा लिया। वह उलझन में था कैसे बेला को चक्कर में लाते-लाते वह स्वयं उसमें फँस गया।

“इतनी शीघ्रता क्यों, चौकीदार ?” बेला ने अपने होंठ सिकोड़ते हुए आनन्द से कहा जो घबराहट को छिपाने का व्यर्थ प्रयत्न कर रहा था। बेला का मुँकेत पाते ही वह फिर बैठ गया। बेला असावधानी से उसके निकट आ बैठी और अंगड़ाई लेते बोली—

“तुम्हारा साहब कब आएगा……चौकीदार ?”

“वह अब नहीं आएँगे।”

“क्या ?” बेला ने गंभीर होकर पूछा।

“जी……कदाचित् आप बड़े बाबूजी को नहीं जानतीं बड़े कठोर स्वभाव के हैं।”

“ओह……तब तो उनसे अवश्य भेंट करनी चाहिए।”

“वह क्यों।”

“इसलिये कि कठोर स्वभाव के व्यक्ति मुझे बड़े अच्छे लगते हैं।”

“परन्तु यह कठोरता तो उनके घर वालों या अपने आधीन व्यक्तियों के लिए है……आपको वह क्या कहेंगे ?”

“मैं भी तो उन्हीं में से हूँ……जानते हो मैं कौन हूँ चौकीदार !”

“नहीं……मेरा साहब !”

“उनकी संगेतर……”बेला ने कुछ संकोच से कहा, “और वह घर वालों से मेरी भेंट करवाने लाए हैं।”

“छोटे बाबू ने अभी तक मुझे बताया नहीं……”

“तुम्हें क्या बताते……अभी तक तो वह स्वयं इससे अनभिज्ञ है।”

इस पर वे दोनों हँस पड़े। आनन्द इसलिए कि चौकीदार के भेस में वह बेला के मन की बात सुन सका और बेला इसलिए कि इसी पद में वह अपने मन की बात कह गई।

सहमा किसी के पाँव की चाप सुनाई दी और दोनों चौंक उठे। आनन्द ने खिड़की का शीशा उठा बाहर झाँक कर देखा और फिर झट से बन्द कर घबराहट में बोला, “अब क्या होगा ?”

“क्यों, क्या हुआ ?”

“स्टेशन मास्टर साहब... इसी ओर आ रहे हैं ।”

“क्या हुआ .. उनसे भेंट भी हो जाएगी... देखो तुम, घबराना मत... ठीक-ठीक कह देना आनन्द बाबू के अतिथि हैं... घर ले जाने को आया हूँ ।”

“बाप रे बाप... वह यहीं बरस पड़ेगे ।”

“तो ठीक रहेगा... मैं भी तो उनका कठोर स्वभाव देख लूँ ।”

“किसी के प्राण जाएँ और आपका तमाशा ।”

“और इन उजाड़ पर्वतों में मन भी बहलाऊँ तो किस से ।”

आहट पास होते ही आनन्द दूसरी ओर के द्वार से बाहर जाने लगा, बेला ने भट से मफलर पकड़ते हुए कहा, “कहाँ चले चौकीदार... टिफ़न तो लेते जाओ ।”

मुख पर लिपटा हुआ मफलर खुल कर बेला के हाथों में आ गया और वह खिलखिलाकर हँसने लगी । आनन्द ने द्वार का सहारा लेकर लज्जा से आँखें नीचे कर लीं । बेला ने मफलर उसकी ओर फेंकते हुए कहा, “चले थे... हमें बनाने...”

“बनाने नहीं... बनने...” आनन्द ने धीमे स्वर में कहा और मफलर लपेट कर नीचे उतर गया । बेला दूसरी ओर के द्वार में आ खड़ी हुई और अंधेरे में डर से भागते हुए आनन्द को देखने लगी... उसके मन को न जाने कौन गुदगुदाए जा रहा था ।

“चौकीदार...” इस भारी स्वर ने आनन्द को वहीं स्थिर बना दिया । बेला ने मुड़ कर दूसरी ओर देखा । स्टेशन मास्टर साहब गाड़ी के साथ-साथ चले आ रहे थे । उनके हाथ में रेलवे की लालटेन थी । समीप आकर उजाले में बेला को ध्यान पूर्वक देखते उन्होंने पूछा, “आप कौन ?”

“एक यात्री ।”

“यात्री ! किन्तु इस समय उजाड़ में क्यों बैठी हो ?”

“पूना की गाड़ी मिस कर दी ।”

“वेटिंग रूम खुलवा लिया होता ।” आनन्द के पिता जी ने नम्रता से कहा ।

“यूँ ही चन्द घंटों के लिए कष्ट करना उचित न समझा ।”

“कदाचित् आपको ज्ञात नहीं अगली गाड़ी सवेरे नौ बजे मिलेगी ।”

“हे भगवान् ! तो इतनी भयानक रात कैसे कटेगी ?”

“इसीलिए तो कहा है कि ...”

“आप ठीक कहते हैं... किन्तु प्लेट फार्म -पर यूँ अकेले...क्या आप मुझे किसी पास के होटल में भिजवा सकते हैं ?”

“होटल दो मील से कम दूरी पर कोई नहीं...और फिर इतनी रात गए कैसे जाओगी ?”

बेला ने मुख पर घबराहट के चिन्ह उत्पन्न करते हुए स्टेशन मास्टर और आनन्द दोनों को देखा । आनन्द चौकीदार के भेस में भय से धरती में गड़ा जा रहा था । बेला के मुख पर चिन्ता को देख स्टेशन मास्टर साहब बोले,

“यदि हानि न समझो तो मेरे घर ही चली चलो...आराम से रात कट जाएगी ।”

“जी...” जैसे उनकी बात उसके मन भा गई हो ।

“मुझे आने में तो थोड़ी देर है...चौकीदार तुम्हें ले जाएगा ।”

“तो वहाँ...”

“घबराओ नहीं...मेरी पत्नी तुम्हारा स्वागत करेगी ।”

बेला ने वहाँ जाने की बात सुन मुस्कराते हुए आनन्द की ओर देखा जो स्टेशन मास्टर का सकेत पा सामान उठा रहा था । क्या दृश्य था और क्या विवशता...हर कोई अपने स्थान पर ही ठीक था ।

स्टेशन मास्टर के कहने के अनुसार आनन्द सामान उठा तेज-तेज पग बढ़ाता अपने घर की ओर चला जा रहा था और बेला चुपके से

मुस्कराती साथ-साथ । दोनों चुपचाप थे...मौन को तोड़ते बेला ने कहा —

“लाओ...कुछ मुझे दे दो ।”

“धन्यवाद...”

“आप मुझ से बिगड़ गए ? भला इसमें मेरा क्या दोष...आज्ञा तो आपके पिताजी की है ।”

“जी - ” वह फूले साँस में भारी स्वर में इतना ही कह पाया । सामान के बोझ से उसका शरीर दबा जा रहा था परन्तु वह विवश था ।

घर से बाहर वाले बरामदे में पहुँचते ही आनन्द ने धड़ाम से कंधे पर लटकाया बिस्तर फ़रश पर पटक दिया । एक धमाका हुआ और सीढ़ियों में बैठा दीनू चौक कर बोला —

“छोटे सरकार...आप...!”

“हाँ, मेरे बड़े सरकार...यह सामान जरा ऊपर ले चलो...” यह कहते हुए आनन्द ने मुड़ कर बेला की ओर देखा जो हाथ में लिये हुए पर्स को बाँह में लपेट रही थी । आँखें मिलते ही दोनों मुस्करा पड़े ।

“चलिए...महिला सरकार...” आनन्द ने बनावटी ढंग में कहा ।

“पहले आप...आगे अतिथि करने वाला और पीछे अतिथि ।” बेला ने पतले स्वर में उत्तर दिया । अन्त में आनन्द को आगे बढ़ना पड़ा और बेला इठलाती हुई उसके पीछे हो ली ।

दीनू ने जैसे ही सामान बरामदे में टिकाया रसोई घर से आनन्द की माता जी ने पुकारा —

“तो क्या दीनू अतिथि घर पर आ गए ।”

“हाँ माँ जी...” झट से आनन्द ने उत्तर दिया और रसोई घर की चौखट तक पहुँचते ही फिर कहने लगा, “परन्तु यह अतिथि मेरा नहीं...बाबा ने भेजा है ।”

“तो अपने बाबा से मिल आए ?” वह चूल्हे में लकड़ी डालते बोली ।

“नहीं माँ · यह दीनू के साथ आई हैं ।”

जैसे ही माँ ने आँखें उठा ऊपर देखा बेला आनन्द की पीठ पीछे से निकल सामने आ गई और हाथ जोड़ भट से बोली,

“नमस्ते माँ जी ..”

“नमस्ते बेटी...आम्रो · क्या तुम इसके साथ आई हो ?”

“नही माँ जी...स्टेशन मास्टर साहब ने भेजा है...आज रात आपकी अतिथि हूँ ।”

“सिर आँखों पर...आम्रो, भीतर आ जाओ ..आनन्द दीनू से कह दो सामान भीतर ले आए ।”

माँ रसोई घर से बाहर आ गई और बेला के सिर पर हाथ फेरती प्यार से उसे भीतर ले गई ।

थोड़े समय पश्चात् आनन्द के बाबा भी आ गये । जब वह बेला की भेंट अपने पुत्र और पत्नी से कराने लगे तो यह मोचकर रुक गए कि अभी तक तो वह स्वयं उसको नाम नहीं जान पाए । बेला ने स्वयं अपना नाम लिया तो सब हँसने लगे । बेला ने अपना अभिनय अच्छी प्रकार निभाया और किसी पर यह स्पष्ट न होने दिया कि वह आनन्द को पहले ही से जानती है ।

बेला को विवश सब के संग दूसरी बार खाना खाना पड़ा । थोड़े ही समय में वह यूँ घुल-मिल गई जैसे उसी का अपना घर हो । बेला के सोने का प्रबन्ध माँजी के कमरे में करवा दिया गया और आनन्द को अपने बाबा के कमरे में सोना पड़ा । दोनों कनखियों से एक दूसरे को देख लेते पर कुछ कह न पाते । आनन्द तो बाबा के सामने बिलकुल मौन हो बैठा ।

रात अधिक बीत चुकी थी । सब अपने-अपने बिस्तर पर आराम

करने को जा लेटे थे परन्तु बेला की आँखों में नींद न थी । वह बार-बार गर्दन टेढ़ी कर खुली खिड़की से बाहर देख लेती पर वहाँ सरसराती हुई हवा के अतिरिक्त कुछ न था । एकाकी उसका मन इस विचार से गुदगुदा उठा...

संभव है आनन्द भी अपने कमरे में लेटा उसी के विषय में कुछ सोच रहा हो ।

अभी सूर्य की किरणों ने सोना न बरसाया था। किन्तु चहचहाते हुए पक्षियों ने अपना संदेश सुनाना आरम्भ कर दिया। माँ ने उठते ही बेला को उठाना चाहा पर वह यौवन की निद्रा में यूँ बेसुध थी मानो वर्षों से सो रही हो... माँ ने जब पूना जाने वाली गाड़ी का वर्णन किया तो वह अर्ध चेतन अवस्था में बोली—“माँ जी... नींद बहुत आई है... मुझ से उठा न जाएगा।”

“तो गाड़ी छूट जाएगी।” माँ ने समीप होकर कान में कहा।

“तो क्या हुआ साँभ की गाड़ी पकड़ लूंगी।”

बेला के इस उत्तर पर उसे हँसी आ गई। उसी समय आनन्द ने उनकी हँसी सुन कर भीतर प्रवेश किया और कहने लगा, ‘माँजी यह आधुनिक तितलियाँ यूँ न जागेंगी इन्हें ‘बेड टी’ चाहिए।’ आनन्द का स्वर सुनते ही बेला निद्रा में चौकन्नी हो गई। माँ बाहर चली गयी तो आनन्द बोला,

“भेम साहब, उठिये... कहीं पूना...”

“पूना... पूना... जाना तो मुझे है और चिन्तित आप लोग हैं।” आँखें खोलकर कड़े स्वर में वह बोली... उसके कड़ेपन में भी एक माधुर्य था जिसने आनन्द को मौन कर दिया और वह मूर्ति बना उसके वक्ष के उभार को देखने लगा जो अंगड़ाई लेते समय सौंदर्य का केन्द्र सा बन गया था।

काले रंग के अंग्रेजी ढंग के ब्लाउज और गरारे पर काली चुनरी जिसमें मुकेश के टुकड़े यूँ लग रहे थे मानो अंधेरी रात में आकाश पर तारे... उसका गोरा और गोल मुख चन्द्र की भांति दृश्य की शोभा बढ़ा रहा था ।

सादापन आनंद को बहुत प्रिय था... किन्तु न जाने आज बेला को देख क्यों उसके विचार डगमगाने लगे... उसे अपने फीके जीवन में एक अज्ञात मिठास अनुभव होने लगी जो बार-बार उसके मन को गुदगुदा रही थी, वह नशे में इतना बेसुध था कि यह देख भी न सका कि बेला उसे कब से घूरे जा रही है और उसे मूर्ति बने देख अपनी सफलता पर गर्व कर रही है ।

यह देख वह कांप सा गया और मुख दूसरी ओर मोड़कर बोला,
“इसमें अप्रसन्न होने की की क्या बात है ? तुम्हें पूना तो जाना ही है ।”

“वह तो मैं भी जानती हूँ परन्तु नदी पर आकर प्यासी लौट जाने को जी नहीं चाहता ।”

“क्या ?” वह इस पर फिर कुछ घबरा सा गया ।

“जी चाहता है खांडला के पर्वतों में घूमू-फिरू... न जाने ऐसा अवसर फिर कब मिले ?”

“पर तुम्हें तो सहेली के विवाह पर जाना है ।”

“कल... आज की छुट्टी... और फिर ऐसा सुन्दर अवसर कभी हाथ न आएगा ।”

जल पान करते समय भी बेला ने सवेरे की गाड़ी पर न जाने का कारण यह बताया कि वह खांडला के आस पास के स्थानों को देखना चाहती है । उसे अकेला देख आनन्द के पिताजी बोलै,

“बेटी ! मेरी या आनन्द की माँ की बूढ़ी हड्डियों में तो अब इतना साहस नहीं कि तुम्हारा साथ दें... यदि चाहो तो आनंद को संग ले जाओ ।”

बेला को और क्या चाहिये था वह झुट्ट बोलती,—“कहते तो आप ठीक हैं...परन्तु क्या यह भी मानेंगे ?”

“क्यों नहीं...और घर में बैठा बैठा क्या करेगा ?” स्टेशन मास्टर आनन्द की ओर देखते हुए बोले ।

यह सोच कर कि इसी बहाने इतवार का दिन अच्छा बीत जायेगा आनन्द ने भी सहमति दे दी और दोनों तैयार होने लगे ।

आनन्द ने माँ को खाने पीने का सामान तैयार करने को कह दिया और उन स्थानों को स्मरण करने लगा जो वह बेला को दिखाना चाहता था । उसे संध्या का ध्यान आया जो उससे कई बार कह चुकी थी कि विवाह के पश्चात् सुन्दर पर्वतों के प्राकृतिक जीवन में वे शहर के बनावटी जीवन को भूल जायेंगे...इसका विचार आते ही वह क्षण भर के लिये एक अनजान डर से काँप गया ।

आज भी आकाश बादलों से घिरा हुआ था...काले काले बादलों के नन्हें-नन्हें टुकड़े पहाड़ियों में उड़ते हुए बड़े भले लगते थे । जहाँ भी वह जाते धुंध छा जाती । बेला और आनन्द इन्हीं बादलों में खोये अनजान मंजिल की ओर बढ़े जा रहे थे । बेला आज अँग्रेजी ढंग के वस्त्र पहिने हुये थी...सफ़ेद धुंध में नीली पेट और ब्लाउज में वह अति सुन्दर दिखाई दे रही थी । कभी-कभी जान बूझकर वह किसी स्थिर से टकराकर गिरने लगती तो तुरंत आनन्द बढ़कर उसे बांहों में सम्भाल लेता और दोनों एक दूसरे को स्पर्श करते ही मुस्करा उठते ।

इसी खेल में आनन्द को होंठों की मुस्कान उसके हृदय की घड़कन बन जाती और व्याकुलता से बंद पक्षी की भाँति वह उड़ने के लिये फड़-फड़ाने लगता...वह सोचने लगता कितना अन्तर है दोनों बहिनों में... एक जल-कण थी और दूसरी ज्वाला...यदि संध्या से पहले उसकी भेंट बेला से हो गई होती तो...तो...

“महाशय ! किस विचार में खोये हैं” बेला के इन शब्दों ने उसे

चौंका दिया । वह उस पुल की ओर बढ़ा जिसके जंगले का सहारा लेकर बेला खड़ी थी ।

“बेला……” आनन्द ने उसके समीप आकर धीमे स्वर में कहा ।

“कहिये……” वह जेब से रेशमी रुमाल निकाल सिर पर बाँधते हुए बोली ।

कहीं तुम्हारे घर वालों को पता चल गया तो कितनी बड़ी भूल का शिकार हो जायेंगे ।”

“तो क्या हुआ,” उसने असावधानी से उत्तर दिया, “उसे सुलभाना भी तो हमारा ही काम है ।”

“ठीक कहती हो……किन्तु सुलभाते-सुलभाते प्रायः पूरे जीवन नष्ट हो जाते हैं ।”

“इसीलिये तो किसी ने कहा है कि जीवन बहुत छोटा है इसे जैसे भी बन पड़े अच्छा व्यतीत करो ।”

“अच्छा तुम ही कहो क्या करना चाहिये ?”

“बीता समय भूल जाओ और भविष्य में क्या होगा यह ब्रात सोचो ।”

“तो फिर……?”

“यह सोचो अब क्या है……” वह बात बदलते बोली, “यह देखो नदी का जल यूँ लग रहा है मानो किसी ने चाँदी बखेर दी हो । मलगजी रंग के बादल अपने पहलू में जल-कण छिपाये किसी के चुम्बन को व्याकुल हैं……और एक आप हैं कि……”

“क्या……?” वह विस्मित सा उसकी ओर देखते बोला ।

“यह शिथिलता……यह मौन……जैसे पहलू में कोई दिल न हो ।” वह आँखों में उन्माद सा ला कर बोली । आनन्द ने यूँ अनुभव किया जैसे कोई अज्ञात शक्ति उसे अपनी ओर खींच रही है ।

वह उसकी बात सुन अवाक् सा उसकी मदभरी आँखों की ओर देखता रह गया मानो वह इन मदिरा के प्यालों से पूर्णतः रस पान

करना चाहता हो। आनन्द ने बेला का हाथ पकड़ उसे अपने समीप खींच कर भटका सा दिया और वह मछली की भांति तड़पती हुई उसकी बांहों में आ गई। दूसरे क्षण वह शरीर को सिकोड़ कर उसकी बांहों से छटपटा कर निकल गई और बोली :—

“ऐसी भी बेचैनी क्या ?”

“पत्थर हृदय को मोम जो बनाना है।” आनन्द उसकी ओर फिर बढ़ते बोला।

बेला अंगूठा दिखा उसे चिढ़ाते हुई भाग निकली... आनन्द भी उसका पीछा करने लगा... विविध दृश्य था... सुहावने बादलों की छाया में वह नदी के किनारे किनारे भागी जा रही थी और आनन्द उसके पीछे एक कंधे पर कैमरा और दूसरे पर टिफ़िन का डिब्बा लटकाये—कुछ समय पश्चात वह रुक गया और अपनी चाल को धीमा कर दिया।

बेला ने जब देखा कि उसका साथी हार मान गया है तो वह वापिस लौट आई और हँसते हुए बोली...

“स्त्रियों की प्रतियोगिता में दौड़ भी न सके ?”

आनन्द चुप रहा और गम्भीर सा मुँह बना उसकी ओर बढ़ता गया। पास आकर बेला ने वही बात दोहराई। आनन्द ने उत्तर तो कुछ न दिया बल्कि निकट आते ही झपट कर आलिंगन में ले लिया मानो कोई पक्षी अपने आखेट की प्रतीक्षा में हो। बेला इस पर तिलमिला उठी और मचलते हुए बोली —

“यह धोखा है... पकड़ना था तो अपने बल से दौड़ कर पकड़ा होता”

“पुरुष स्त्रियों को बल से नहीं बुद्धि से पकड़ते हैं।”

आनन्द ने उसे छोड़ दिया और दोनों खिलखिला कर हँस पड़े। हँसी का स्वर तैरते हुए बादलों से टकरा कर अपने पीछे एक मधुर गुँज सी छोड़ गया।

दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़कर पुल पार करके सामने की भील की ओर चल पड़े। टिफिन का डिब्बा उन्होंने नहर के चौकीदार के पास रख दिया।

तीन ओर से पर्वतों में घिरा नीला गहरा स्वच्छ जल जो सीमेंट के एक ऊँचे बांध से रोका हुआ था बड़ा सुन्दर प्रतीत हो रहा था।

बेला के कहने पर आनन्द ने वार्डन से मोट बोट ली और दोनों उस पर बैठ भील में उतर गये।

दोनों चुपचाप लहरों को देखते चले जा रहे थे। ज्यूं-ज्यूं नाव गहराई में बढ़ती आनन्द को लगता जैसे वह स्वयं गहराई में उतरा जा रहा है जहाँ से उसका उभरना असम्भव हो जायेगा...बेला चन्द ही क्षण में उसके जीवन पर इतनी छा गई थी कि वह सिधे हुए पक्षी की भांति उसके संकेत पर नाच रहा था। यदि यह रहस्य खुल गया तो संध्या क्या सोचेगी...संध्या का ध्यान आते ही उसे चक्कर सा आ गया...उसे लगा जैसे भील की हर तरंग में संध्या की छाया उसे कुछ समझा रही हो...आनन्द ने नाव की गति तेज कर दी...

गति तेज हो जाने से पानी के छीटे उड़-उड़ कर नाव में आने लगे। बेला ने आनन्द के कंधे का सहारा ले लिया और उसके हवा में उड़ते हुए बालों को संवारने लगी...हर क्षण उसका आनन्द के समीप होते जाना...उसका स्पर्श...आनन्द के हृदय की धड़कन तेज हो रही थी।

दूसरे किनारे पर पहुँचकर आनन्द ने नाव को तट पर लगा दिया और बेला को उतरने के लिये हाथ का सहारा दिया। जब आनन्द नाव को ठीक जमा रहा था बेला ने भाग कर सामने के पत्थर पर कैमरा सेट करके रख दिया और स्वयं उसकी कमर में हाथ डालकर खींचने लगी। आनन्द को इसका ज्ञान तब हुआ जब तस्वीर खिंच जाने पर वह कैमरा उठाने को भागी। आनन्द ने कैमरा उस से छीन लिया और उसे नाव के मध्य खड़ा करके उसकी तस्वीर उतारने लगा। बेला ने ऊँचे स्वर में पूछा, "तस्वीर किस ढंग में हो।"

“यौवन...और बैक ग्राऊन्ड में झूमते हुए बादल—यौवन का उन्माद अंगड़ाई ही स्पष्ट कर सकती है।”

बेला ने हाथ ऊपर उठाकर अपने वक्ष के उभार को और उभारा।

“ऊँ हूँ...यूँ नहीं...” आनन्द बोला, “नेचुरल पोज में...यूँ तनिक झुककर...” आनन्द ने दोनों हाथ उसकी कमर में डालकर उसे घुमाना चाहा। बेला ने उठी हुई दोनों बांहें उसके गले में डाल दीं और बोली—
“कहो तो यूँ...”

आनन्द ने मुस्करा कर उसके दोनों हाथ पुनः ऊपर उठा दिये। उसकी आँखों के उन्माद और वक्ष के तीखे उभार को देख आनन्द किसी विचार से काँप सा गया और शीघ्र ही परे हट उसकी तस्वीर लेने लगा।

दोनों बढ़ते-बढ़ते पहाड़ियों के ऊपर चढ़ गये और बादलों की ओट में खो गये। आनन्द ने बेला की कमर में अपना हाथ डाल दिया। दोनों की आँख एक दूसरे से कुछ कहना चाहती थीं परन्तु कह न सकती थीं।

“यूँ लगता है जैसे हम धरती छोड़ आकाश में उड़े जा रहे हों।” बेला ने आनन्द के पास आते हुए कहा।

“आकाश में उड़ तो जायेंगे...यदि लौट न सके तो...” आनन्द ने पूछा।

“तो क्या ? वहीं रह जायेंगे...” सुना है स्वर्ग भी वहीं है।”

“जहाँ हम हैं वह भी तो स्वर्ग ही है।”

धुंध के बादल कुछ ऊपर उठे तो दृश्य साफ हो गया। दोनों एक खुले स्थान पर पहुँच गये जहाँ से नीचे देखने पर लगता था जैसे बादल नीचे धरती पर हों और वे स्वयं आकाश पर।

दूर एक भयानक शोर सुनाई दे रहा था। बेला ने पूछा, “यह क्या है ?”

“भरना...लोनावला की पहाड़ियों में सब से बड़ा भरना...”

“हां लोनावला...अब हम खंडाला से दूर लोनावला की सीमा में हैं...जहाँ हम खड़े हैं इसे टाईगर प्वाइन्ट कहते हैं।”

“तो क्या यहाँ टाईगर—शेर भी होते हैं ?” बेला भय से आनन्द से लिपट गई।

“हां बेला...शेर...बबरशेर...किन्तु हमें वह कुछ नहीं कह सकते।”

“वह कैसे ?”

“आओ तुम्हें दिखाऊं...”

आनन्द बेला को खींचता हुआ थोड़ा आगे ले गया और एक स्थान पर रुक कर उसने बेला को धरती पर उलटा लेट जाने को कहा। आनन्द बेला के स्वयं भी पास ही उलटा लेट गया और हाथ से संकेत करते बोला, “वह देखो...क्या है...”

बेला ने नीचे झाँककर देखा और विस्मित दृष्टि से देखती रह गई। एक ऊँची खड़ी दीवार की पहाड़ियों की गहरी खाई...नीचे घाटी में हर वस्तु चींटी जैसी दिखाई दे रही थी। इतनी गहरी खाई उसने कभी न देखी थी। ऊँची हृदय हिला देने वाली पहाड़ियाँ...एक ओर घना वन और दूसरी ओर भरना जो लगभग पाँच-छः सौ फुट की ऊँचाई से घाटी में गिर रहा था और जिसका पानी एक पतली लकीर सी नदी का रूप धारण कर उसी घने वन में गुम हो रहा था।

धुंध के बादल छंट जाने से दृश्य स्पष्ट हो गया था। आनन्द ने नीचे नदी के किनारे हाथ का संकेत किया। भूरे रंग का एक पशु वहाँ पानी पी रहा था। आनन्द बोला,

“वह देखो - शेर...विचित्र दृश्य है...न हम नीचे जा सकते हैं और न वह इस खाड़ी से बाहर आ सकता है...इसीलिये इस स्थान को टाईगर प्वाइन्ट का नाम दिया गया है। शिकारी यहाँ से उसका बेधड़क शिकार करते हैं परन्तु अपने शिकार को बाहर नहीं ला सकते।”

वहाँ से दोनों सीमा के साथ-साथ भरने की ओर बढ़ने लगे । पानी का शोर और घाटी में उसकी गूँज दृश्य को बड़ा भयानक बना रहे थे । बेला को आनन्द का संग यह भयानकता न अनुभव होने देता ।

भरने के पास आनन्द ने बेला की और फिर अपनी और उसकी इकट्ठी तस्वीर उतारी । आज जीवन में पहली बार इन घाटियों में आनन्द ने एक विशेष आनन्द अनुभव किया । वह पहले भी मित्रों के संग यह दृश्य देख चुका था किन्तु आज की यह सैर सब से अनोखी थी ।

यहाँ से वे उस नदी के किनारे हो लिये जो पर्वतों से होकर इस भरने में परिवर्तित हो जाती थी । थोड़ी दूर जाकर पानी छोटी-छोटी नालियों में बह जाता और स्वच्छ और निर्मल जल दर्पण की भाँति चमक रहा था । बेला ने आनन्द को खींच कर नदी में ले जाना चाहा पर वह गिरते-गिरते संभल गया और बोला—“डूबने का निश्चय किया है क्या ?”

“जी...किन्तु अकेले नहीं...”

“तो एक बात मानो...”

“क्या ?”

“डूबने से पहले अपने जूते उतार लें ।” आनन्द ने दबे स्वर में कहा ।

“आप ठीक कहते हैं यह बिचारे भीग गये तो जीना कठिन हो जायेगा ।”

दोनों इस व्यर्थ बातचीत पर हँस पड़े और अपने-अपने जूते उतार पास की एक झाड़ी में छिपा दिये । अपनी पेन्टों को घुटनों तक ऊँचा कर वे पानी में उतर पड़े और उछलते कूदते बच्चों के समान भागने लगे । दोनों संसार को बिल्कुल भूल चुके थे और एक दूसरे के हृदय की धड़कन को जान गये थे । उनके मन में कामना का उठता हुआ तूफान उस हवा और बरखा के तूफान से किसी प्रकार कम न था । बिजली की चमक और बारूद की गर्जन इसमें भी छिपी हुई थी और इसकी शक्ति और बल भी केवल विस्फोट से जाने जा सकते थे ।

वे पागलों की भाँति उस ठण्डे स्वच्छ और निर्मल जल की धारा को लाँघते हुए बढ़ गये। उनके चलने से पानी के छीटे उछलकर उनके मुख को चूमते और ओस-कणों की भाँति उनके कपोलों पर आ ठहरते। उनके दूटने पर लगता मानो मन की भावनायें और अभिलाषायें बुल-बुले से बनकर आपस में टकरातीं और मिलते ही ओभल हो जातीं।

थोड़ी दूर पत्थर की सुन्दर सीढ़ियाँ देख दोनों रुक गये जिनसे भर-भर करता हुआ जल बड़ा सुहावना लगता था। बेला के प्रश्न करने पर आनन्द ने बताया कि यह पानी एक बड़े जलाशय में एकत्रित है और वर्षा ऋतु में भर कर सीढ़ियों पर से छलकता है।

एक गर्जन हुई और और बेला आनन्द से लिपट गई। सफेद और घने बादलों के भुण्ड ने उन्हें घेर लिया। भरपूर प्याले छलक पड़े। आनन्द ने अपने जलते हुए होठ बेला के होठों पर रख दिये। वह मछली के समान तड़पी और गुत्थमगुत्थ होकर उसकी बांहों में मचल कर रह गई।

बादल छंट गये, दोनों ने एक दूसरे को देखा। उनकी आँखों में लाल रेखायें भलक रही थी। बेला के होठों पर एक दबी मुस्कान स्पष्ट हुई और वह आनन्द की बांहों से निकलकर सीढ़ियों की ओर भागी। आनन्द लपकते हुए चिल्लाया—

“बेला ! बेला ! रुक जाओ—गिर पड़ोगी।”

बेला ने सुनी अनसुनी कर दी और भावना के प्रवाह में उन सीढ़ियों पर भाग कर चढ़ने लगी जिनसे तेज गति से भर-भर कर जल नीचे बह रहा था। काई के कारण उन पर फिसलने से पाँव का ठहरना कठिन था। दो बार सीढ़ियाँ ऊपर चढ़ने पर बेला फिसलकर घड़ाम से नीचे आ गिरी।

आनन्द ने लपककर उसे थाम लिया और वे फिसलते-फिसलते बचे।

“कहा न था कि फिसल जाओगी।” बेला को बांहों में लेते आनन्द बोला।

बेला ने अपने आपको उसकी बांहों में ढीला छोड़ दिया और बोली,
“आनन्द ! यह तूने क्या किया...मुझे नदी पर आकर प्यासा क्यों छोड़ दिया ?”

“बेला क्यों सुध खोई जाती हो...मेरी अच्छी बेला...देखो पानी का प्रवाह बहुत तेज है...शीघ्र उतर चलो...वह देखो बादल घने हुए जाते हैं...यह अब अवश्य बरसेंगे...हम तूफान में घिर जायेंगे।”

“मेरी आशाओं से खेलकर मुझे मंझधार में छोड़ते हो और तूफान की सूचना देते हो...आनन्द...आनन्द...मुझे बचाओ।”

बेला की यह दशा देख आनन्द ने उसे बांहों में खींच लिया और व्याकुलता से उसे चूमने लगा...घटायें घनी होती चली गईं और धुंध की मोटी चादर ने उन्हें लपेट लिया। चारों ओर एक अंधेरा सा छा गया, कुछ सुझाई न देता था।

इसी दशा में वे गिरते पड़ते अनजाने मार्ग पर बढ़ने लगे। आशायें तीव्र हो उठीं और घाटी में गर्जन और तूफान के मध्य वे एक दूसरे से ऐसे लगे हुए थे मानो किसी आकर्षण-शक्ति ने उन्हें एक कर दिया हो।

फिर गर्जन हुई, बिजली चमकी और वातावरण क्षण भर के लिये जगमगा उठा। घटायें टकराईं और बरस पड़ीं। थोड़े ही समय में जल थल हो गया। भरनों का शोर आकाश में घिरे बादलों से उलझ रहा था। लगता था कि मेघ स्वयं धरती पर उतर कर क्रोध बरसा रहा हो।

धीरे-धीरे बरखा की बीछार कम होने लगी। घटायें कहीं दूर चली गईं और आकाश फिर से निखरने लगा। कुछ समय पश्चात् समां बिलकुल खुल गया और वही दृश्य चमकने लगा जैसे कुछ हुआ ही न था।

पास ही किसी खण्डहर की चट्टान पर बेला लेटी हुई थी और आनन्द उसकी पीठ धीरे धीरे थपक कर उसे उठाने का प्रयत्न कर

रहा था। जब कुछ देर तक वह न उठी तो आनन्द अपने स्थान से उठकर खण्डहर के बाहर आ ठहरा।

थोड़े समय पश्चात् बेला अपने भीगे हुए और उलझे हुए कपड़ों को ठीक करती उसके पीछे आ गई। उसने आनन्द की ओर देखा और फिर दोनों आँखें नीची कर के धीरे-धीरे अपने मार्ग पर चल पड़े।

दोनों चुपचाप थे। अब उनके हाव भाव में वह चंचलता और शोर न था मानो बरखा के पश्चात् वातावरण में शान्ति सी छा गई हो। बेला ने दो एक बार प्रश्न पूछने का प्रयत्न भी किया किन्तु आनन्द ने किसी न किसी बहाने टाल दिया।

जब दोनों घर पहुँचे तो माँ ने टिफिन खोलकर देखा। खाना वैसे का वैसे रखा था। पूछने पर कोई कारण न पाकर बिचारी चुप हो रही और चाय का प्रबंध करने लगी—न जाने दोनों किस विचारधारा में खोये हुए थे।

उसी रात दोनों को अलग होना था। आनन्द ने उसे पूना की गाड़ी पर चढ़ा दिया और गाड़ी छूटने से पूर्व उनमें केवल यही बातचीत हुई।

“बेला...” नीची दृष्टि किये हुए धीरे से उसने पूछा।

“हूँ!” उसने असावधानी से उत्तर दिया।

“तुम खंडाला में आईं...और जो कुछ यहाँ बीता उसका किसी से वर्णन तो न करोगी?”

“किस लिये?” उसके होंठों पर एक चपल मुस्कान थी।

“इसी में सब की भलाई है...तुम्हारी...मेरी...और...”

“और किसकी ? रुक क्यों गये ?” बात पूरी करते बेला ने कहा।

“तुम्हारी दीदी की...तुम तो जानती हो हम दोनों का विवाह होने वाला है।”

आनन्द के मुंह से संध्या की बात सुनते ही बेला के तन बदन में आग सी लग गई परन्तु अधिकार से काम लेते हुए वह खिलखिला कर हंसने लगी । आनन्द उसकी इस हंसी पर डर सा गया और बोला—

“वचन दो कि यह रहस्य ही रहेगा ।”

“परन्तु एक बात पर ।”

“क्या ?”

“कि तुम मेरी आशाओं को कभी ठेस न पहुँचाओगे ।”

“पूरा प्रयत्न करूंगा ।”

“और हाँ……”

“क्या ?”

“यदि मुझ पर विश्वास हो तो कुछ दिन के लिये यह कैमरा दे दो ।”

“परन्तु फिल्म……”

“मैं धुलवा लूंगी……शीघ्रता में अपना न ला सकी……वहाँ आवश्यकता पड़ेगी ।”

आनन्द ने जैसे ही कैमरा उतार कर बेला के हाथ में दिया गाड़ी ने सीटी दी और वह अपना बजान सा हाथ उसे बिदा करने को हिलाता रहा किन्तु उसका मन और मस्तिष्क कहीं और थे ।

सामने प्लेटफार्म की घड़ी साँझ के छः बजा रही थी । पूना से बम्बई जाने वाली गाड़ी में केवल आध घन्टा शेष था और वह अपनी चिन्ता मिटाने के लिये प्लेटफार्म की दूसरी ओर बढ़ा जहाँ उसके पिता सामान लिये उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे ।

‘दीदी, ममी कहाँ है ?’

“रसोईघर में……और हां बेला क्या हुआ तुम्हारे कालिज का ।”

“दाखला मिलने की आशा तो है……जन्म का सार्टीफिकेट मांगा है ।”

“वह तो मिल ही जायेगा……चलो जरा मेज-कुर्सियां लगा लें ।”

“अभी आई दीदी……” यह कहते हुए वह भीतर भाग गई । संध्या को उसकी इस शीघ्रता पर हँसी आ गई ।

आज संध्या का जन्मदिन था । आज वह पूरे बीस वर्ष की हो जायेगी । हर वर्ष की भांति राय साहब उसका जन्मदिन अब भी मना रहे थे किन्तु यह जन्मदिन पहले से भिन्न था, इसलिये कि इस अवसर पर संध्या की सहेलियों के अतिरिक्त राय साहब के कुछ मिलने वाले भी बुलाये जा रहे थे । इनमें आनन्द भी था ।

आनन्द का ध्यान आते ही उसके होठों पर हँसी खिल आई और वह गुनगुनाने लगी । रेनु और नौकर चाकर भी उसकी प्रसन्नता में सम्मिलित थे और कमरों की सजावट में लगे थे ।

बेला ने रसोई घर में प्रवेश किया और ऊँचे स्वर में चिल्लाई—
“ममी……ममी……”

‘क्या है ?’ मालकिन ने मैदा गूँधते हुए पूछा ।

“मेरे जन्म का सार्टीफिकेट कहाँ रखा है ?”

“आज तो संध्या का जन्मदिन है...तुम्हें इतनी जल्दी क्या है ?”

“कालिज में दाखले के लिये...वह आज ही चाहिये।”

“अब मैं यहाँ समोसे बनाऊँ या...”

“मुझे बता दो कहाँ रखा है...मैं स्वयं ढूँढ लूंगी।”

“जा...डैडी की अलमारी की ऊपर वाले खाने में उन के जरूरी पत्र पड़े हुए हैं...उन्हीं में कहीं होगा।”

“और चाबी ?” बेला ने पूछा।

“यह...खोल ले।” मालकिन ने मैदे से सना हाथ ऊपर उठाया। बेला ने साड़ी से लटकता हुआ चाबियों का गुच्छा खोल लिया।

आज वह बहुत प्रसन्न थी। उसे बम्बई में ही दाखला मिल जायेगा और वह आनन्द के निकट ही रह सकेगी। जब वह यह सोचती कि उसकी दीदी यह देखकर क्या कहेगी तो वह कुछ चिन्तित सी हो जाती किन्तु फिर आनन्द का मन जीतने के उल्लास में वह पागल सी हो जाती।

डैडी की अलमारी खोल उसने बीच वाले द्राज़ को ताली लगाई और उनके रखे हुए पत्रों को टटोलने लगी। अचानक उसकी दृष्टि एक बंधे हुए छोटे से पुलिन्दे पर जा पड़ी जिस पर संध्या का नाम लिखा था। उत्साहपूर्वक उसने उसे खोलकर पढ़ना आरम्भ कर दिया...क्या यह सच है...उसे अपनी आँखों पर विश्वास न आया और उसने उन्हें दोबारा पढ़ना आरम्भ कर दिया।

संध्या उसकी सगी बहिन न थी बल्कि उसके जन्म के पूर्व उसके पापा ने उसे गोद लिया था। यह सरकारी प्रमाणपत्र थे...तो क्या दीदी किसी और की लड़की है...इस बात का विचार आते ही आश्चर्य में डूबी बेला के दांत क्रोध में कटकटाने लगे। उसने पत्रों को वैसे ही लपेट दिया और अपना सर्टीफिकेट ढूँढने लगी।

सर्टीफिकेट लेकर उसने अलमारी को वैसे ही बंद कर दिया और संध्या के विषय में विचार करते हुए बाहर आ गई। बाल्कोनी की

सीढ़ियों पर खड़े होकर उसने ध्यानपूर्वक संध्या को देखा जो नौकर को साथ लिये गोल कमरे में मेज बिछवा रही थी। कितनी भिन्नता है दोनों के रूप में...कोई भी तो उन्हें सगी बहिनें नहीं कह सकता... कितना अन्तर है दोनों के विचारों और स्वभाव में...दोनों अलग-अलग वातावरण में पली हैं...फिर दोनों का चुनाव क्यों एक...दोनों आनन्द से प्रेम करती हैं...कुछ ऐसे ही उलझे हुए विचार उसके मस्तिष्क में चक्कर काटने लगे...उसकी आँखों में डाह और द्वेष स्पष्ट था।

“वहाँ खड़ी किसका निरीक्षण कर रही हो।” संध्या ने बेला को पुकार कर उसके विचारों का तांता तोड़ दिया। वह फिर कहने लगी— “मेम साहब नीचे उतरिये...अभी काम बहुत है।”

उसकी यह आज्ञा सुनकर बेला जल भुन सी गई और फीके मन से संध्या का हाथ बंटाने लगी। वह रह रह कर उसके मुख को निहारती और उसे अपने से बिल्कुल अलग पाती।

सांयकाल चार बजे तक जन्मदिन की सब तैयारियाँ पूरी हो चुकी थीं। राय साहब भी आज दफतर से दो घन्टे पहले ही आ गये थे और घर का हर व्यक्ति घर सजाने में व्यस्त था। संध्या और बेला भी अपने कमरे में दर्पण के सामने खड़े होकर शृंगार कर रही थीं।

संध्या को तो सुन्दर वस्त्र पहिनना ही था इसलिये कि सब आने वालों के लिये आज वही केन्द्र थी किन्तु बेला भी आज अपने आपको आकर्षित बनाने का पूरा प्रयत्न कर रही थी। आज उसने काली साड़ी और काला ब्लाऊज पहिन रखा था। उसका गोरा मुख काले वस्त्रों में बड़ा सुन्दर लग रहा था। साड़ी पर मुकेश की कढ़ाई ऐसे प्रतीत होती थी मानो चन्द्र के इर्द-गिर्द झिलमिलाता हुआ तारों का झुरमुट हो।

पाँच बजते ही अतिथियों ने आना आरम्भ कर दिया। पहिले आने वालों में उसकी सहेली निशा और उसके संग दो और उसकी सखियाँ

थीं । उसके पश्चात् संध्या के चाचा अपने बालबच्चों सहित आये फिर आनन्द और धीरे-धीरे दूसरे ग्रामन्वित लोग भी आने लगे ।

एक घन्टे में गोल कमरा अतिथियों से भर गया । दो-दो चार-चार व्यक्ति अपना-अपना भुण्ड बना कर आपस में बातों में संलग्न थे । संध्या संकोच से आनन्द के अधिक निकट न बैठ सकी और निशा व दूसरी सहेलियों के साथ बातें करने लगी । उसकी इस अनुपस्थिति और संकोच का लाभ उठाते हुए बेला आनन्द के निकट आ बैठी और बातों में उसका उपहास उड़ाने लगी । आनन्द उसकी इस निकटता से डर रहा था और वह बातों-बातों में उससे घुलमिल जाना चाहती थी । अपने ही ध्यान में वह इसकी बातों का उत्तर दिये जाता और चोर दृष्टि से हर थोड़े समय पश्चात् संध्या को देख लेता जो स्वयं कनखियों से उसे देखे जा रही थी । बेला का यूँ खुल कर उससे हँस-हँस कर बातें करना संध्या को अच्छा न लग रहा था । जब वह अधिक न रह सकी तो अपने स्थान से उठकर उनके पास आ बैठी और बेला से बोली ।

“शायद ममी तुम्हें ढूँढ़ रही थीं ।”

“क्यों ?”

“ऊपर वाले कमरे की चाबियों के लिये ।”

“वह तो मैंने उन्हें रेनु के हाथ कब की भिजवा दीं ।”

“तो आओ भीतर से चार कुर्सियाँ और ले आयें ।”

“यह काम तो नौकर भी कर सकते हैं ।” बेला ने असावधानी से उत्तर दिया ।

“तुमसे तो कुछ भी नहीं होता ।” संध्या क्रोध के चिन्ह लाकर कठोर स्वर में बोली ।

“बिगड़ती हो क्यों दीदी...मैं जानती हूँ तुम क्या चाहती हो...लो मैं चली...”

“इसमें क्रोध की क्या बात है,” आनन्द ने बात काटते कहा, “दीदी तुमसे बड़ी ही तो है ।”

“इसीलिये तो आज्ञा मान कर चली जा रही हूँ...जब से आप आये हैं बिचारी एक बात भी तो नहीं कर सकी आप से ।” बेला ने व्यंग्यात्मक मुद्रा में कहा और हँसकर भीतर चली गई । संध्या को उसकी इस बात पर क्रोध सा आ गया । आनन्द को संध्या का यह असमय का क्रोध अच्छा न लगा और वह बोला ।

“संध्या ! बहिन छोटी सही परन्तु उससे स्नेह और नम्रता से बोलना चाहिये ।”

“आप इसे नहीं जानते...यह जितनी छोटी है उतनी ही जुबान की तेज़ ।”

“उसका घूँ मेरे साथ बैठना तुम्हें अच्छा नहीं लगा ।”

“नहीं...यह बात तो नहीं...” संध्या घबरा कर बात बदलते हुए बोली, “कामचोर लोग मुझे अच्छे नहीं लगते ।”

“तो क्या यह काम न था ?”

“कौनसा ?”

“बैठी हुई मेरा मन बहला रही थी”, आनन्द मुस्कराते बोला । इस पर संध्या भी मुस्करा पड़ी पर यह बात उसे अच्छी न लगी । वह कई दिनों से बेला की हरकतों को ध्यानपूर्वक देख रही थी । कभी-कभी तो वह आँखों-आँखों में ही आनन्द से बातें करने लगती जो उसे बिल्कुल उचित न लगता । उसके हर हाव भाव में यौवन की उमंग थी ...। आधुनिक ढंग की तितली कहीं अपने सौन्दर्य की किसी भ्रदा से उसके दो चार तिनकों पर बिजली गिरा कर राख न कर दे । इसका ध्यान आते वह भय से कांप सी जाती और फिर अपने इस विचार पर स्वयं से ही कहने लगती... कितनी पागल हूँ मैं भी...मेरा आनन्द कभी ऐसा नहीं हो सकता ।’

राय साहब ने केक काटने के लिये संध्या को बड़ी मेज के पास बुलाया और सब लोग उस मेज के गिर्द खड़े हो गये । ज्यों ही संध्या ने केक पर सजी मोम बत्तियों को फूँक मार कर बुझाया सारा कमरा

तालियों से गूँज उठा। केक का पहला टुकड़ा उसने पापा को और दूसरा ममी को दिया। बारी बारी सब ने अपनी प्लेट बढ़ाई और एक-एक टुकड़ा लेकर खाने लगे। आनन्द ने भी बधाई देते हुए अपना भाग संध्या से ले लिया।

बेला ने बढ़कर छुरी संध्या के हाथ से ले ली और बोली—

“लाप्रो दीदी में बांट दूँ...तुम थक जाओगी।” यह कहते हुए उसने एक टुकड़ा संध्या को दिया और एक टुकड़ा अपनी प्लेट में रख लिया। एक और टुकड़ा काटते हुए वह आनन्द को सम्बोधित कर बोली—

“यदि कहें तो एक आपकी प्लेट में भी रख दूँ।”

“ओह !” वह चौंकते बोला, “परन्तु मैं तो अपना भाग ले चुका।”

“नहीं दीदी का मन बहुत छोटा है...” उसने आपको छोटा टुकड़ा दिया है...यह अन्याय मुझ से नहीं देखा जाता।”

“तो न्याय कीजिये...लाइये...” आनन्द ने प्लेट बढ़ाते हुए कहा।

बेला ने मुस्करा कर संध्या की ओर देखा जो क्रोध में भरी उसकी हर क्रिया को देख रही थी और केक का एक बड़ा टुकड़ा काट कर उसकी प्लेट में रख दिया। आनन्द उसे लेते हुए बोला—

“बेला ! संध्या ने सच मुझसे बड़ा अन्याय किया था, परन्तु इतना बड़ा टुकड़ा मुझे देकर तो तुमने सब अतिथियों से अन्याय किया है। मेरे विचार में संध्या का न्याय तुमसे ठीक था। उसने सबसे एक समाप्त बरताव किया है।”

आनन्द की यह बात सुन संध्या की सब सहेलियाँ खिलखिला कर हँसने लगी और संध्या के गम्भीर मुख पर भी मुस्कान की एक रेखा दौड़ गई। वे सबको यूँ अपने पर हँसता देख जल भुन सी गई और अपनी प्लेट उठा बाहर वाली खिड़की के पास जा खड़ी हुई।

खाने पीने के पश्चात् गाने बजाने का कार्यक्रम आरम्भ हुआ। रेनु ने नाच दिखाया, निशा ने एक गीत सुनाया और जब बेला को सब खींच

कर सभा में लाये तो वह भी चहक उठी। उसका स्वर सब से निराला था। उसने एक अंग्रेजी गाना सुनाया जिसके स्वर पर सबको तालियों से ताल मिलानी थी। अच्छा खास गुगल बन गया। वह यह गाना प्रायः कालिज में लड़कियों के संग मिलकर गाया करती थी।

गाना समाप्त हुआ तो सब ने बेला को घेर लिया। इसी भीड़ में मेज पर रखा चाय का प्याला उलट गया और छीटे आनन्द के सूट पर जा गिरे। वह भट से उठा और गुसलखाने की ओर बढ़ा। संध्या ने देखा कि बेला भी कुछ समय पश्चात् उसी ओर चल दी। उसने देखा अनदेखा कर दिया और निशा से बातें करने लगी।

आनन्द ने नल खोला ही था कि गुसलखाने का द्वार खुला और बेला भीतर आ धमकी। आनन्द ने चौक कर पीछे देखा और बोला—
“तुम !”

“जी...यह धब्बे यूँ न जायेगे।”

“क्यों ?”

“चाय के धब्बे पानी से नहीं, नीबू से जाते हैं...नहीं तो यह शार्क स्किन का सूट नष्ट हो जायेगा।”

“तो नीबू कहाँ से आयेगा ?”

“आईये... मैं दिलाऊँ।”

बेला यह कहते आनन्द को अपने साथ भीतर खुलने वाले द्वार की ओर ले गई और उसे पापा के कमरे में बिठा दिया और स्वयं भाग कर रसोई घर से नीबू उठा लाई और उसे काटते बोली, “आप तकिये का सहारा ले लें।”

“वह क्यों ?”

“पैन्ट तब ही साफ़ होगी हाँ इसी प्रकार....अब ज़रा टांग फैला लीजिये.....”

“परन्तु यह जूता....” आनन्द टांग फैलाते बोला।

“बिस्तर पर रख लीजिये...” यह कहकर बेला ने नीबू से पेन्ट के धब्बों को मिटाना आरम्भ कर दिया। पेंट के बाद वह उसका कालर साफ करने लगी...ऐसा करते हुए वह उसके अधिक निकट होती गई। बाहर के स्थान की अपेक्षा यह स्थान शान्त था किन्तु आनन्द को यह शान्ति अच्छी न लग रही थी। वह उसी सभा में लौट जाना चाहता था। अकेले में बेला से उसे डर सा लग रहा था।

“आपने सूरन चिड़िया के बक्के की सी क्यों बना रखी है?” बेला ने उसे छेड़ते हुए कहा।

“यह तुम्हें क्या सूझ रही है? शीघ्र करो। कोई आ गया तो...”

“तो क्या? हमें खा जायेगा...न जाने आप मुझ से यूँ दूर क्यों हटते हैं?”

“दूर...क्या?”

“देखू तो आपका दिल...भय से धड़क रहा है...मुझे यहाँ तक सुनाई दे रही है।”

“क्या?”

“आपके हृदय की धड़कन।”

बेला ने भट से अपना कान आनन्द के सीने पर रख दिया और यूँ प्रगट करने लगी मानो कुछ सुन रही हो। उसका यह ढंग देख आनन्द डर सा गया।

श्रीकृष्ण जी महाराज की इस कथा को सुनकर मैंने बहुत ही रोमांचित होकर

संध्या ने एक कड़ी दृष्टि से बेला को देखा जो उसका सामना न कर सकी और झट से बाहर चली गई ।

उसके चले जाने पर दो क्षण के लिये कमरे में चुप्पी रही । दोनों एक दूसरे को देखते रहे । संध्या मौन को तोड़ते हुए बोली—

“आनन्द साहब ! नीबू से कपड़ों पर लगे धब्बे तो चले जाते हैं परन्तु सीने के दाग कभी नहीं जाते ।” संध्या यह कह कर वापिस लौट गई और आनन्द देर तक खड़ा इन शब्दों की गूँज सुनता रहा ।

जब वह गोल कमरे में आया तो सब अपना अपना उपहार संध्या को दे रहे थे । वह भी उसके पास पहुँचा और जेब से एक सुन्दर डिब्बा निकाल कर उसके सामने रख दिया । इससे पहले कि वह उसे उठाती निशा ने बढ़कर उसे सबके सामने खोल दिया । सब उस उपहार को देखने लगे । वह गले का एक सुन्दर हार था जिसके लाकट पर एक पक्षी खुदा था और नीचे लिखा था नीलकंठ । निशा ने हार उसी समय संध्या के गले में डाल दिया । संध्या ने मुस्करा कर उसे स्वीकार करते हुए आनन्द का धन्यवाद किया ।

बेला की आँखों से डाह की चिंगारियाँ सी झलकीं परन्तु अवसर को देखते हुए उसके हाँठों पर मुस्कान उत्पन्न हुई और बोली—

“दीदी ! उपहार तो मिलते ही हैं किन्तु ऐसे उपहार जीवन में कभी कभी ही मिलते हैं ।”

“धन्यवाद !” संध्या ने हार को साड़ी के पल्लू के नीचे छिपाते हुए कहा और पापा की ओर बढ़ी जो द्वार पर खड़े कुछ अतिथियों को विदा कर रहे थे । संध्या भी हाथ जोड़ उनको नमस्कार करने लगी ।

वह इस प्यार भरे उपहार को पाकर बड़ी प्रसन्न थी परन्तु इस प्रसन्नता में भी एक रेखा की चिन्ता स्पष्ट थी जो बेला और आनन्द को इकट्ठे देखकर उभर आई थी । वह उस टीस को भूलने का प्रयत्न करने लगी किन्तु वह बिखरे हुए उल्लास के फूलों में काँटा सा बन कर खटकने लगी ।

एक-एक करके सब अतिथि चले गये । रात की जल्म-पहन खामोशी में परिवर्तित हो चुकी थी । सबसे अन्त में जाने वाले आनन्द और निशा थे । चाय पार्टी के कारण रात का खाना किसी ने न खाया, इसलिये नौकरों को थकावट दूर करने के लिये अवकाश दे दिया गया ।

काम-काज से निपट कर संध्या भी आराम करने अपने कमरे में चली गई । बेला अपने रात के वस्त्र पहिन रही थी । संध्या को देख बीच ही बीच जलती हुई अपने काम में लगी रही । संध्या समझ रही थी कि वह अपनी आज की मूर्खता के कारण चुप थी पर वह क्या जाने कि दूसरी ओर प्रेम का डाह अंगड़ाइयाँ ले रहा है ।

डाह अब केवल प्रेम का डाह ही न था बल्कि अपने अधिकारों का डाह था । वह इस रहस्य को जान चुकी थी कि संध्या उसकी सगी बहिन नहीं और यह बात उसके माता-पिता ने उससे छिपा रखी है । वह यह जानकर दीदी से और भी असावधानी बरतने लगी ।

“बेला...” संध्या ने नम्रता से पुकारा ।

“हूँ...” उसने दबे स्वर में उत्तर दिया ।

“क्या मुझ से रूठ गई ?” साड़ी उतारते हुए संध्या ने पूछा ।

“तुम्हें तो न जाने क्या हो गया है... हर बात उल्टी समझ रही हो ।”

“बड़ी जो ठहरी... जहाँ तुम्हें मार्ग से हटते देखूँ... सावधान करना अपना कर्तव्य समझती हूँ ।”

“दूसरों का समझना तो ठीक आता है... कभी अपने मार्ग को भी देखा है ?” बेला क्रोध में झुंझनाते हुए बोली ।

“देखा है... पर पग सोच समझ कर उठाती हूँ... और फिर कभी मार्ग से हटने भी लगूँ तो माता-पिता समझा देते हैं ।”

“देखो दीदी मैं अब कोई बच्ची नहीं हूँ जो तुम पुलिस वालों के समान मेरा पीछा करती रहती हो... तुम सोच समझ से काम लेती हो तो मैं भी कोई अंधी और मूर्ख नहीं हूँ ।”

“जवानी अंधी होती है उसे संभालने के लिये किसी का सहारा लेना आवश्यक है।”

“ऐसे भाषण मैंने बहुत सुने हैं। सहारा वह लेते हैं जो डगमगा रहे हों... मैं अपनी सुध में हूँ।”

“तुम मेरी बातों को दूसरी ओर लिये जा रही हो... कहीं तुम्हें ठीक मार्ग पर लाने के लिये मुझे पापा से न कहना पड़े।”

“पापा... पापा... हर समय पापा... क्या कह दोगी—यही कि आनन्द बाबू से बहुत घुल-मिल गई है।”

“हाँ, जो बात मैं न कहना चाहती थी वह तुमने स्वयं कह दी... मैं तुम्हें साफ-साफ कह दूँ कि तुम्हारा उनसे अधिक मेलजोल मुझे अच्छा नहीं लगता।”

“क्यों?”

“इसका उत्तर देना मैं उचित नहीं समझती।”

“इसका उत्तर मैं देती हूँ... इसलिये कि तुम उनसे प्रेम करती हो।”

“बेला!” संध्या आवेश में चिल्लाई।

“सटपटा क्यों उठी... दीदी तुम्हारे पहलू में हृदय है तो क्या मेरे में हृदय नहीं।”

बेला के इस गम्भीर उत्तर ने संध्या को आश्चर्य में डाल दिया और वह फटी-फटी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगी। बेला फिर कहने लगी —

“तुम्हें उनसे प्रेम है... तो मुनो वह मुझसे प्रेम करते हैं!”

“बेला!” संध्या ने आवेश में चिल्लाते हुए बेला के गाल पर थप्पड़ खींच मारा।

“तुम्हारा यह साहस...” वह क्रोध में बुड़बड़ाई, “जिसके टुकड़ों पर पड़ती हो उसी को आँखें दिखाती हो।”

“बेला...” संध्या कांपते हुए बोली, “यह तुम क्या कह रही हो?”

“ठीक कह रही हूँ... अपनी स्थिति को देख कर हाथ उठाया होता !”

“तो क्या मैं...”

“हाँ, हाँ तुम हमारी बहिन नहीं... न जाने किस भिखारी की...”

“बेला, बस आगे न कहो... मैं कुछ सुनना नहीं चाहती।” वह साड़ी को दोबारा लपेटते हुए बाहर की ओर भागी।

जैसे ही वह नीचे भागी बेला के हाथ पाँव बरफ हो गये। क्रोध में आज उसके मुँह से यह क्या निकल गया... पापा तो सुनते ही उसे मार डालेंगे... वह डर से काँपने लगी और धीरे-धीरे सीढ़ियों से उतरने लगी। नीचे संध्या राय साहब का द्वार खटखटा रही थी। द्वार खुलते ही राय साहब ने संध्या को चिन्तित देख पूछा—

“क्यों बेटा, क्या बात है?”

“पापा, क्या मैं तुम्हारी बेटी नहीं?”

“पगली कहीं की, यह भी भला कोई पूछने की बात है,” उन्होंने उसके कंधे पर प्यार से हाथ रखते हुए कहा। मालकिन भी यह अनोखा प्रश्न सुन पास आ गई।

“नहीं पापा... आप झूठ कह रहे हैं... आप मुझसे छिपा रहे हैं।

“किस पगले ने यह तुम से कहा?”

“बेला ने... और पापा मुझे साफ़-साफ़ कहिये वरना मैं चैन से न बैठ सकूंगी” उसकी आँखों में झलकते हुए आँसू देखकर वह सटपटा उठे। यह रहस्य बेला किस प्रकार जान पाई? जैसे ही उनकी आँखें मालकिन से मिलीं वह बोल उठी—

“हाँ, यह उसी की शरारत है।”

“कैसे?”

“सार्टीफिकेट ढूँढ़ने को चाबी जो ले गई थी।”

यह सुनते ही राय साहिब मालकिन पर बरस पड़े। आज तक ऐसी भूल उससे कभी न हुई थी। दोनों के क्रोध को देख संध्या जान गई कि दाल में अवश्य कुछ काला है। अब उसने फिर यह जानने की प्रार्थना की तो वह ऊँचे स्वर में चिल्लाये—“क्या कहा उसने ?”

“कि तुम हमारे टुकड़ों पर पलती हो।”

“उसकी यह मजाल...बेला !” वह क्रोध में चिल्लाये। बेला जो पर्दे के पीछे खड़ी उनकी बातें सुन रही थी डरते-डरते भीतर आई राय साहिब उसे बुरा भला कहने लगे।

बेला ने चालाकी से काम लिया और दीदी से लिपट कर क्षमा मांगने लगी और फिर रोते हुए अपने कमरे में चली गई।

संध्या ने जब अपनी हठ न छोड़ी तो विवशतः राय साहिब को प्रगट करना पड़ा कि वह उनकी लड़की नहीं है। उन्होंने अधिक समय तक संतान न होने के कारण उसे गोद ले लिया था परन्तु बाद में रेनु और बेला का जन्म हो गया फिर भी उन्होंने उसे अपने बच्चों से भी अधिक प्यार से रखा। उसे वह हर वस्तु दी जो माता पिता अपनी संतान को दे सकते हैं।

“परन्तु मेरे माता पिता कौन हैं ?” वह फिर पूछ बैठी।

“यह जानकर तुम्हें क्या लेना है ?”

“अन की सांत्वना...आप कह डालिये।”

“तुम्हारे पिता का देहान्त हो चुका है।”

“और मेरी माता।”

“मुझे कुछ ज्ञान नहीं...हमारे दफ्तर के हैड क्लर्क उसे जानते थे।”

“तो क्या वह भी...”

“सुना है अभी तक जीवित है...परन्तु तुम क्या लोगी यह सब जानकर...जन्म तुम्हें अवश्य उन्होंने दिया है पर तुम बेटी हमारी हो...समझदार हो, स्यानी हो...ऐसी बातों को मन में लाकर क्या करोगी...”

इस घर में क्या अभाव है ...कोनसी आवश्यकता है हमारी बेटी की जो पूरी नहीं हुई ?”

वह चुपचाप माँ के बिस्तर पर लेट गई। उसने राय साहिब या मालकिन से इस विषय में और कुछ न पूछा... वह पूछती भी क्या ? भेद था जो वर्षों पश्चात् प्रगट हुआ...वह अपने आप को सबसे पृथक् समझने लगी।

राय साहिब के संकेत पर मालकिन बत्ती बुझा कर बेला के कमरे में सोने चली गई। आज की रात वह उसे उस कमरे में जाने देना उचित न समझते थे।

कमरे में मौन छा गया। राय साहिब समझे संध्या सो गई है और सवेरे तक उसके मन और मस्तिष्क के उलभाव ठीक हो जायेंगे। उनके प्यार और लाड़ में वह सब कुछ भूल जायेगी। परन्तु वह यह न जान पाये कि उस बिचारी ने पूरी रात आँखों में ही आँसू बहा कर काट डाली...अपने हृदय के तूफान की वह स्वयं भी थाह न ले सकती थी।

रलिया राम हैड क्लर्क अपने दफ्तर की मेज पर भुके ध्यानपूर्वक किसी फ़ाईल को देख रहे थे कि चपरासी ने उनके सम्मुख एक कागज़ का टुकड़ा लाकर रखा। वह उस पर लिखा नाम पढ़कर चौंक से गये “संध्या उनसे मिलना चाहती थी।

“कहाँ है ?” उसने चश्मा उतार कर जेब में रखते हुए चपरासी से पूछा।

“बाहर सड़क पर।”

रलिया राम ने राय साहिब के कमरे की ओर देखा और फाटक की ओर बढ़ा। आज सवेरे आते ही राय साहिब ने बता दिया था कि संध्या रहस्य जान गई है और अपनी मां से मिलने का हठ कर रही है। संध्या के अचानक वहाँ आ जाने से वह सोच भी न सका कि उसे क्या करना चाहिये।

दफ्तर से थोड़ी दूर संध्या निशा की गाड़ी में बैठी थी। रलिया राम को देखते ही उसने उन्हें एक ओर आने का संकेत किया। उस समय निशा भी उसके संग ही गाड़ी में बैठी हुई थी। संध्या के वहाँ आने का उद्देश्य समझते हुए भी रलिया राम के ढंग से प्रतीत होता था जैसे उसे किसी बात का ज्ञान नहीं। संध्या ने पहला प्रश्न ही यह किया—

“काका जी, मैं कौन हूँ ?”

“तुम...संध्या बेटी...” वह बात को मजाक में लेते बोले।

‘मेरा आशय है...आप मुझे कहाँ से लाये थे?’

“तुम्हे...मे...”

“जी... मुझे बनाइये नहीं और साफ़ बताइये मेरी माँ कहाँ है?”

“क्या लोगी उसका नाम पूछकर?”

“मे उससे मिलना चाहती हूँ...कहिये कहाँ मिलेगी?”

‘दफ़्तर बन्द हो लेने दो...मे तुम्हे साथ ले चलूंगा...’

‘मे अकेले ही जाऊंगी।’

“अकेले! नहीं वेटा...भले आदमियों का उस ओर अकेले...”

“वह काम मेरा है...आप मुझे केवल पता समझा दें।”

संध्या की हठ और उसकी गम्भीरता ने रलिया राम को विवश कर दिया कि वह उसे सब कह दे। उसने उसे बताया कि उसकी माँ गरीबों की बस्ती में किसी सराय में रहती है और यात्रियों को चाय इत्यादि पिला कर बसर करती है। उसने यह भी बताया कि वह भले आदमियों का स्थान नहीं और वहाँ हर समय गुण्डे मंडलाते रहते हैं। उचित तो यह है कि वह उस ओर न जाए। किसी दिन वह स्वयं जाकर उसकी माँ को ले आयेगा किन्तु संध्या के न मानने पर उसे सराय का पता ठिकाना बताना ही पड़ा।

उसी दिन दोपहर को संध्या निशा के संग उसकी गाड़ी में बैठ बताये हुये पते पर चल दी।

खुली सड़कें छोड़कर तंग रास्तों से होती गाड़ी शहर के उस क्षेत्र में पहुँची जहाँ बम्बई के मजदूर और भिखारी लोग रहते थे। दो चार गंदी गलियों को पार कर गाड़ी सराय रहमत उल्लाह के सामने आ ठहरी। मिट्टी और कीचड़ में भरे हुए अस्वच्छ बच्चे भट से गाड़ी के गिर्द आ खड़े हुए और शीशों से गाड़ी के भीतर झाँकने लगे। ड्राइवर ने बाहर निकल कर उन्हें रोका भी पर व्यर्थ—आज पहली बार उन्होंने एक नई गाड़ी और दो सुन्दर महिलायें इस गली में देखी थीं।

सराय रहमत उल्लाह का तंग द्वार देखकर संध्या का दिल डर से

काँप सा गया। जीवन में पहली बार उसने ऐसे स्थान में पाँव रखे थे।

साहस करके उसने गाड़ी का द्वार खोला और नीचे उतर आई। निशा भी उसके संग जाना चाहती थी परन्तु उसने उसे रोक दिया और वह चुपचाप गाड़ी में बैठी रही।

ड्राइवर के साथ उसने सराय में प्रवेश किया। वह बहुत साहस बटोरती पर कोई अनजान डर उसे खाये जाता।

सराय एक अच्छा खासा चंडूखाना थी। बहुत सी मिली जुली आवाजों से एक विचित्र शोर उत्पन्न हो रहा था। बन्द वातावरण में सिग्रेट का धुआँ घुटन सी पैदा कर रहा था। संध्या को खाँसी आ गई।

ड्राइवर ने भीतर जाकर पूछनाछ की ओर लौट आया। लोग संध्या को घूर-घूर कर देख रहे थे।

“कुछ पता चला?” संध्या ने उससे पूछा।

“हाँ। आइये...मेरे साथ...”

वह ड्राइवर के पीछे-पीछे चल पड़ी जो थोड़ा चलकर एक स्तम्भ के पास जा ठहरा। मार्ग में इधर-उधर लोग इस प्रकार बैठे हुए थे मानो अफ्रीम खाये हों। संध्या उनसे बचकर चलती हुई उसी स्तम्भ के पास आई जहाँ ड्राइवर खड़ा था। सामने बरामदे में एक अघेड़ आयु की स्त्री मिट्टी के प्यालों में गर्म कहवा उंडेल रही थी। संध्या कुछ क्षण तो विस्मित उसे देखती रही फिर ड्राइवर से पूछने लगी—

“तो क्या यही है खाना बीबी।”

“जी...वास्तविक नाम तो कोई नहीं जानता, सब इसे खाना बीबी ही कहते हैं।”

संध्या—स्तम्भ के पीछे खड़ी होकर उसे देखने लगी। खाना बीबी ने एक प्याला उठाकर सामने लेटे हुए आदमी को दिया जो प्याला पकड़ते हुए बोला—

“खाना बीबी” कितनी अच्छी हो तुम...तुम्हारी आँखें इस अवस्था

में भी जादू का प्रभाव रखी है....जवानी में जाने....”

वह बात पूरी भी न कर पाया था कि खाना बीबी ने उसके गाल पर थपड़ दे मारा। चाय का प्याला उसके हाथों से परे जा गिरा और पूरा वातावरण कहकहों से गूँज उठा। लोगों को पागलों की भाँति हँसते देख संध्या बाहर की ओर भागी और हाँपती हुई गाड़ी चलाने को कह दिया और वह निशा की गोद में सिर रखकर रोने लगी।

वह अपनी माँ की यह दशा देखकर अपने मन से अधिकार खो बैठी। क्या वह उसी की जाई है ? यह विचार आते ही उसकी आँखों के सामने अंधेरा सा छााने लगता। वह भयानक हँसी अभी तक उसके कानों को छेद रही थी।

उस रात लज्जा से संध्या अपने घर नहीं गई और निशा ही के घर रही। रात भर बरखा होती रही और बाहर पूरा जल-थल था। उसकी आँखें भी भरपूर मोती से बरसाया कों। निशा ने उमे रोकना उचित न समझा जिससे वह अपने मन का बोझ हलका कर सके।

यदि आनन्द को पता चल गया कि वह वास्तव में राय साहिब की बेटा नही तो वह उसके विषय में क्या सोचेगा ? कहीं यह बात उनके प्रेम मार्ग में दीवार बन कर न खड़ी हो जाये।

वह मस्तिष्क की इन्हीं उलझनों में खोई बैठी थी कि किसी ने द्वार खटखटाया। आने वाले की पुकार सुन कर संध्या सहसा कांप गई। यह आनन्द की आवाज थी।

संध्या धीरे-धीरे द्वार के समीप पहुँची और बरामदे में खुलने वाले किवाड़ खोल दिये। छींटों की बीछार से बड़ी कठिनाई से छाता संभालते हुए आनन्द भीतर आया और संध्या ने झटकिवाड़ बंद कर दिया। संध्या का उतरा हुआ मुख देखकर आनन्द चिल्लाया—

“यह क्या पागलपन है ?”

“क्या ?” वह गम्भीरता से बोली।

“घर चलो सब तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।”

“आप चलिये...मैं कल सवेरे आ जाऊँगी।”

“पागल न बनो...बेला की बातों का बुरा मानना तुम्हें शोभा नहीं देता...वह तुम्हारी छोटी बहिन ही तो है।”

“छोटी है इसीलिये तो यह बरताव है, बड़ी होती तो शायद मुझे घर से निकाल देती।”

“उसकी क्या मजाल जो पापा के होते तुम्हें कुछ कह सके।”

“उसकी मजाल आपने शायद नहीं देखी। वह तो मुझसे यह भी कहती है कि आप उससे प्रेम करते हैं।”

“संध्या...” वह क्रोध में चिल्लाया, “यह सब झूठ है मेरी आँखों में तुम्हारे सिवा कोई नहीं। मैं कल ही राय साहिब से कहकर बात पक्की करवाता हूँ।”

संध्या की आँखों में पल भर के लिये फिर उजाला आ गया। वह किसी घुंघली आशा पर मन ही मन मुस्कराई भी परन्तु उसके मुख पर कोई भावना प्रगट नहीं हुई।

“तो कब आओगी?” आनन्द के इस प्रश्न ने उसे फिर होश में ला दिया। दो एक क्षण चुप रहने पर वह बोली—

“कल सवेरे...आशा है आप भी वहाँ होंगे।”

“हाँ...” आनन्द ने छाते के नीचे उसका चेहरा छिपा लिया और रूमाल से उसके आँसू पोंछते बोला, “अब रोओगी तो नहीं?”

“नहीं।”

आनन्द चला गया और वह खड़ी कितनी देर उस मार्ग को देखती रही जहाँ वह अंधेरे में गुम हो गया था। उसके मन की घघकती जलन वह कुछ शीतल कर गया था।

बेला ने जब सुना कि संध्या लौटकर नहीं आई तो उसके मन में डर सा उत्पन्न होने लगा। कहीं संध्या की हठ उसे आनन्द की दृष्टि में गिरा न दे और वह उससे प्रेम के स्थान पर द्वेष न करने लग जाये।

राय साहिब से बातचीत करने के पश्चात् जब आनन्द बाहर निकला

तो उसने देखा कि कोई व्यक्ति अंधेरे में उसकी कार के पास खड़ा भीग रहा है। यह बेला थी जो उसे देखते ही उससे लिपट गई और बोली —

“आनन्द मुझे क्षमा करना...बात कुछ न थी दीदी ने यूँ ही बढ़ा दी।”

“बात दीदी ने बढ़ा दी या तुमने,” आनन्द कठोर स्वर में बोला, “यह भी तो कह दिया तुमने कि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।”

“तो इसमें झूठ की क्या बात है, क्या आप मुझसे प्रेम नहीं करते?”

“प्रेम....” यह शब्द दोहराते हुए आनन्द ने एक कम्पन सी अनुभव की, “प्रेम...प्रेम का भी तो कोई ढंग होता है बेला...तुम मुझे अच्छी अवश्य लगती हो परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि तुम संध्या से यह कहती फिरो।

“वह भी तो मुझसे कह गई है कि मुझे आपसे अधिक मेलजोल बढ़ाना न चाहिये।”

“क्यों?”

“यह तो उसी से पूछिये जो कह रही थी कि पुरुषों क्या भरोसा कहीं तुम्हें झूठे प्रेम का शिकार न बना लें। तुम सुन्दर हो, जवान हो और नासमझ...जाल में आ सकती हो।”

“फिर तुमने क्या कहा?”

“मैंने इतना ही कहा कि दीदी जब जाल में उलझ जाऊँगी तो तुम सहायता के लिए आ जाना”, वह व्यंगपूर्ण ढंग में मुस्कराते हुए बोली।

“बेला ! क्या यह सच है कि वह तुम्हारी सगी बहिन नहीं?” आनन्द कार का द्वार खोलते हुए बोला। बेला संकेत पाकर भीतर आ गई।

“जी...यह बहुत दिनों तक भेद ही रहा पर अंत में खुल गया”, बेला ने आनन्द का हाथ अपने हाथों में लेते हुए कहा। वह समझती थी कि शायद इससे अच्छा अवसर उसे जीवन में और न मिल सके। झूठ, चतुराई या किसी भी ढंग से आनन्द के मन पर अधिकार पाना ही

चाहिये। उसका विश्वास था कि प्रेम और युद्ध में हर बात उचित है। विचारमग्न आनन्द के मुख को ध्यानपूर्वक निहारते हुए फिर बोला—

“रात पापा ममी से कह रहे थे कि यह भेद कुछ दिन और छिपा रहता तो अच्छा था।”

“किसलिये?” भट चौक कर आनन्द ने पूछा।

“यदि विवाह से पहले आपको पता चल गया कि वह किस खानदान की है तो शायद आप उसे स्वीकार ही न करें।”

“परन्तु उनके मन में ऐसा विचार क्यों आया। विवाह तो मुझे संध्या से करना है उसके खानदान से नहीं”, आनन्द जल कर बोला।

“शायद आप नहीं जानते कि उसकी माँ एक आवारा सी है जो अब तक गंदी गलियों की खाक छानती फिरती है और उसके पिता का कुछ पता नहीं।”

“बेला ! नहीं ऐसा न कहो...राय साहिब तो कहते हैं कि उसकी माता किसी ऊँचे घराने की विधवा है जिसे दुर्भाग्य ने नीचे गिरा दिया है...वह गरीब अवश्य है परन्तु स्वयं काम करके अपना पेट पालती है।”

“हो सकता है यह ठीक हो...पर मैं जो जानती हूँ वह मैंने आपको बता दिया”, वह उसकी नैकटार्ई से खेलते हुए बोली।

“समझ में नहीं आता क्या करूँ?”

“अपना निश्चय बदल डालिये।”

“कैसे?”

“अपना दिल उसे सौंपिये जो उसे ठुकराये नहीं।”

“मैं नहीं समझा।”

“मुझसे विवाह कीजिये...मैं अपने प्राण आप पर न्यौछावर कर सकती हूँ।”

“बेला...नहीं...ऐसा नहीं हो सकता...तुम संध्या को नहीं जानती...उसका दिल छलनी हो जायेगा।

“अब समझी...आप कायर भी हैं...उसको दिया वचन नहीं तोड़ सकते चाहे वह आप पर कितनी ही शंका करे...यदि उसे आपके प्रेम का इतना ही विश्वास था तो मुझे मार्ग से क्यों हटाने लगी...मुझे समझाने के लिये आपको धोखेबाज़ प्रेमी क्यों कहने लगी ?”

“यह है तो सच ही...पर मैं भी उसके मुंह से सुनूँ ।”

“क्या अपनी प्रशंसा ?...कहिये वह मुझ से किस बात में बढ़कर है...विद्या में, सुन्दरता में, खानदान में या प्रेम करने में...इस से अधिक आपको मेरे प्रेम का और क्या विश्वास चाहिए कि आपके एक हल्के से संकेत पर खंडाला में मैंने अपना सब कुछ आपको दे दिया ।”

यह कहते हुए उसने अपना सिर आनन्द के सीने पर रख दिया और रोने लगी । खंडाला के शब्द ने आनन्द के मष्तिष्क में हलचल सी उत्पन्न कर दी । वह उलझन में पड़ गया...संध्या और बेला...बेला: और संध्या और दोनों में वह स्वयं...क्या करे क्या न करे...। इन्हीं विचारों में गुमसुम कितने ही समय तक वह मूर्तिवत् मौन बैठा रहा । बेला कुछ सोचकर गाड़ी का द्वार खोलकर बाहर जाने लगी तो आनन्द ने उसकी बांह पकड़ते पूछा,—“जा रही हो ?”

“जी ।”

“कहाँ ?”

“अपने दुर्भाग्य पर रोने...आप जाइये...मैं भविष्य में कभी आप दोनों के मार्ग में न आऊँगी ।” उसने गम्भीर स्वर में आँसू पोंछते हुए कहा ।

“पगली मत बनो...शायद मैं अपना निश्चय ही बदल दूँ ।”

“सच !” वह प्रसन्नता से बोली ।

“हाँ बेला...परन्तु ठीक प्रकार सोच विचार के...वचन दो कि तब तक अपने मनकी बात किसी से न कहोगी ।”

“वचन देती हूँ”, बेला ने अपना हाथ उसके हाथ में देते कहा, “एक वचन आपको भी मुझे देना होगा।”

“क्या?”

“यह कोई जानने न पाए कि यह सब बातें मैंने आप से कही हैं।”

“घबराओ नहीं...मैं किसी से कुछ न कहूँगा।

बेला चली गई पर आनन्द के मन में एक आग सी लगा गई जिसने उसके मन और मस्तिष्क को अपनी लपेट में ले लिया। वह कभी स्वप्न में भी यह न सोच सकता था कि संध्या उसके विषय में ऐसे विचार रखती है। उसे बेला की बातों पर विश्वास आ गया। बेला ने भी हर बात इस ढंग से कही कि उसमें किसी प्रकार की शंका का स्थान न रह जाये। आनन्द को राय साहिब पर भी क्रोध आ रहा था जिन्होंने यह भेद उससे इसलिये छिपाये रखा कि कहीं वह संध्या से विवाह करने को नहीं न कर दे। इन्हीं विचारों में उसने कार स्टार्ट कर दी और गाड़ी को तेज गति पर छोड़ दिया।

दूसरे दिन पौ फटने से पूर्व ही निशा की गाड़ी में बैठकर संध्या घर लौट आई। राय साहिब और मालकिन ने उसे गले से लगा लिया। वह जानते थे कि अधिक समय तक वह उन से अलग नहीं रह सकती। उसकी माँ के विषय में उन्होंने कोई प्रश्न न किया।

बालकनी से भाँक कर जब बेला ने उसे पापा और ममी के साथ बैठे चाय पीते देखा तो जल भुन गई। वह फिर उनके यहाँ क्यों लौट आई। आनन्द चाहे उसकी बातों में आ गया हो पर सम्भव है कि संध्या के सम्मुख वह फिर पिघल जाए। संध्या की बातों में वह रस था जो पत्थरहृदय को भी मोम कर दे।

उसे सहसा एक चाल सूझी। एक ही ओर पांसा फेंकने से कुछ न बनगा। उसे दोनों के मन में एक समान आग सुलगानी चाहिये ताकि जब वह भड़क उठे तो बुझाने वाला निकट न आ सके। वह द्वेष और डाह से दाँत पीसने लगी।

बाहर बालकनी की सीढ़ियों पर आहट हुई और वह झट से अपने बिस्तर पर उलटी लेट गई। न जाने उस समय उस की आँखों से आँसू कैसे छलक पड़े और वह तकिये में मुँह छिपा कर रोने लगी। संध्या देव पाँव कमरे में आई और उसके पास बैठ गई। थोड़ी देर चुप रहने के पश्चात अपनी सुकुमार अंगुलियाँ उसकी पीठ पर फेरते बोली, बेला...बेला... सवेर हो गई।”

“बेला ने आँसुओं से भीगा चेहरा ऊपर उठाया और “दीदी!” कहकर उसकी गोद में सिर छिपा सिसकियाँ लेकर रोने लगी। संध्या ने प्यार से उसके बिखरे बालों को संवारना आरम्भ कर दिया। वैसे ही सिर नीचे किए वह कहने लगी—

‘दीदी...दीदी तू कहां चली गई थी...रात भर मैं चिन्ता में व्याकुल रही...दीदी मुझे क्षमा कर दो...मैं तुम्हारी छोटी बहिन हूँ... मेरी जीभ क्यों न जल गई जब...’

“अब छोड़ो इन बातों को...देखो तो मैं तुम्हारे पास आ गई... उठो मैं तुम्हारे सुन्दर केश संवार दूँ।” बेला ने धीरे से गर्दन उठाकर ऊपर देखा। संध्या फिर कहने लगी, “देखो तो यह रोती हुई आँखें इस सुन्दर मुखड़े पर शोभा नहीं देती। तुम्हारे यह दिन रोने के नहीं हंसने के हैं।”

“यह यौवन...यह सौन्दर्य...यह दिन न ही आते तो अच्छा था।” आँसू पोंछते हुए वह बोली।

“ऐसा नहीं कहा करते—वसन्त तो जीवन का सबसे अच्छा मौसम है।”

“परन्तु बाग में चोर और लुटेरे छिपे बैठे हों तो...”

“यह आज क्या बहकी-बहकी बातें कर रही हो...कौन चोर है? कौन तुम्हें छूने तक का भी साहस रखता है?”

“दीदी...तुम्हारा...”

“हाँ, हाँ, कहो...रुक क्यों गई?”

“तुम्हारा.....आनन्द.....”

आनन्द का नाम होठों पर आते ही वह सिर से पाँव तक काँप गई जंसे किसी ने अचानक दबी राख में से अगार कुरेदने आरम्भ कर दिए हों। उसने मन को अधिकार में करते हुए पूछा—

“क्या कहते थे वह ?”

“दीदी, पहले वचन दो कि उससे कुछ न कहोगी।”

“हाँ, हाँ...तुम घबराओ नहीं...आखिर मैं भी तो सुन्नू क्या किया उन्होंने।”

“मुझ से झूठा प्रेम जता...मुझे कहीं का न रखा।”

“बह कैसे ? तुम रुक-रुककर क्यों कहती हो...मुझ में इतना धैर्य नहीं...सब कह डालो।”

बेला ने तकिए के नीचे से वह सब तस्वीरें निकालकर उसके हाथ में दे दीं जो उसने आनन्द के संग खंडाला में उतारी थीं। संध्या उन्हें देखते ही अवाक सी कभी उन तस्वीरों को और कभी बेला के चिन्तित मुख को देखने लगी। थोड़ी देर दोनों एक दूसरे को ऐसे ही देखती रहीं, फिर बेला बोली।

“हाँ दीदी...यह खंडाला है।”

“परन्तु तुम वहाँ गईं कब ?”

“पूना जाते समय...मैं क्या जानूँ...वह भी दादर से उसी गाड़ी में आ बैठे...हँसते खेलते उन्होंने मुझे पागल सा कर लिया और मेरे न करने पर भी मुझे एक दिन के लिये खांडला में उतार कर ठहरने के लिए विवश कर दिया।”

“तब क्या हुआ ?” संध्या के होठ काँप रहे थे। उसमें अब इतना बल भी न था कि वह खड़ी रह सके। वह पास ही पलंग पर बैठ गई।

“तब तक मैं यह न जानती थी कि तुम और आनन्द भी आपस में प्रेम करते हो...उसकी मीठी बातों में आ कर मैं भी उससे प्रेम करने

लगी...सुहावना मौसम, सुन्दर वातावरण...खंडाला की सुनसान पहाड़ियाँ और इस पर दो युवा...हमें बहुत दूर ले गया..."

"तो क्या?"

"हाँ दीदी...मैंने अपना सब कुछ लुटा दिया...दीदी मैं बिल्कुल निर्दोष हूँ...मेरी अच्छी दीदी मुझे क्षमा कर दो।" वह घुटनों के बल वहीं बैठ गई और संध्या के दहकते हुए सीने से लिपट कर रोने लगी...चंद्र क्षण के लिए उसे अनुभव हुआ मानो उसने अपना सिर अंगारों पर रख दिया हो।"

संध्या यह सुनकर पागल सी हो गई जैसे किसी ने बाण मार कर एक ही निशाने में उसका दिल वेध डाला हो। वह बेला से कहे भी तो क्या...उसकी बातों ने उसे प्रेम और द्वेष की उस पतली धार पर ला खड़ा किया जहाँ वह कहीं की न रही। वह बेला से झूठी सान्त्वना देते हुए बोली —

"पगली रो मत...अच्छा किया जो तूने मन की दशा मुझसे कह डाली। तब ही जब से वह खंडाला से लौटा है कुछ खोया खोया रहता है...यदि वह भी अपने मन की बात मुझसे कह देता तो मैं तुम दोनों के जीवन की प्रसन्नता के लिए सब कुछ स्वयं त्याग देती।"

"नहीं दीदी...ऐसा न कहो...दोष तो सब मेरा था...मैं स्वयं ही अंधी हो गई थी, दण्ड मुझे ही मिलना चाहिए। पापा से कहकर मुझे दिल्ली वापस भेज दो...मैं बम्बई एक दिन भी रहना नहीं चाहती..."

"पागल मत बनो...मंझधार में आकर चप्पू छोड़ दिया तो सब डूब जायेंगे...धैर्य रखो आनन्द तुम्हारा ही रहेगा।" यह कहते कहते दो आँसू मोतियों की भाँति उसकी आँख की कोरों में आ ठहरे। वह धीमे स्वर में बोली, "क्या वह यहां आये थे?"

"हाँ दीदी...रात को पापा से बहुत देर तक बातें करते रहे।"

"तुम से नहीं मिले?"

“केवल जाते समय... इतना ही कहा... बेला तुम्हें धीरज से काम लेना चाहिये... यदि विवाह हुआ तो तुम्हीं से होगा... मैं न जानता था कि तुम्हारी दीदी किसी वेश्या की लड़की है।”

“वेश्या !...” जैसे नींद में वह चिल्ला उठी हो... “बेला वह सच कहते हैं अब तक तो मैं उसकी न थी अब उसी वेश्या की होकर रहूंगी... कह देना उससे... और यह भी कह देना कि मेरी माँ तो जैसी भी है परन्तु तुम से बहुत अच्छी है।” यह कहते हुए उसने गले से अपना हार उतारा और उस पर खुदे हुए नीलकंठ को देखने लगी, फिर उसे बेला के हाथों में देते बोली :—

“संभाल कर रखना... कहीं मेरी भाँति इसे खो न देना... पक्षी जो ठहरा... किसी समय भी हाथों से निकल कर उड़ सकता है।”

“दीदी, क्या कह रही हो... मैं तुम्हारा अधिकार नहीं छीन सकती...”

“पगली... कैसा अधिकार... और हाँ धीरज से काम लेना... मैं आकर पापा से कहकर सब ठीक करवा दूंगी” यह कहकर वह लम्बे डग भरती हुई बाहर चली गई। बेला इतना भी न पूछ सकी कि वह कहाँ जा रही है। संध्या के चले जाने के पश्चात् बेला ने वह हार अपनी मुट्ठी में दबा चूम लिया और स्वयं ही कहने लगी—“संध्या कहती है कि पक्षी किसी समय भी उड़ सकता है परन्तु वह नहीं जानता कि यह अब बेला के हाथों में है जो उसके पंख काट कर रख देगी।”

थोड़े समय पश्चात् घर में शोर उठा कि न जाने अचानक संध्या कहाँ चली गई। नौकर, मालकिन, रेनु, यहाँ तक कि बेला भी मौन रही। कोई पापा को न बता सका कि उनकी लाड़ली अचानक कहाँ चली गई।

केवल बेला अपने मन में एक गुदगुदी का आनन्द ले रही थी।

शाम के छः बजने को थे। बेला चाय की मेज पर अकेली बैठी उन प्यालों को देख रही थी जो राय साहिब और मालकिन के लिए सजाये गए थे परन्तु आज उन्होंने चाय न पी थी। वर्षों से शाम की चाय संध्या के हाथों से पिया करते थे। आज उसकी अनुस्थिति में वह चाय न पी सके। उन्हें विश्वास था कि उनकी बेटी मन का बोझ हल्का हो जाने के पश्चात् स्वयं लौट आएगी! वह स्वप्न में भी न सोच सकते थे कि इसकी तह में बेला का हाथ है जो दोनों ओर एक समान आग लगा रही थी।

चाय का प्याला होठों से लगाते बेला सोच रही थी कि कहीं आनन्द ने उसका हाथ न पकड़ा तो उसका क्या होगा। एकाएक आनन्द के स्वर ने उसके विचारों का तांता तोड़ दिया।

“हलो...बेला...सब कहां है?”

“पापा और ममी अभी पड़ोस में गए हैं।”

“और संध्या...”

बेला ने कोई उत्तर न दिया और आनन्द के मुख की ओर देखने लगी। आनन्द ने एक कुर्सी खींची और बैठते हुए पूछा “चुप क्यों हो गई?”

“दीदी चली गई।”

“कहां?” वह चौंकते बोला।

“अपनी माँ के पास...” बेला ने संध्या का दिया हुआ हार निकाल उसके सामने रखते हुए कहा ।

“और यह हार ?”

“मुझे सौंप गई । कहती थी आनन्द बाबू आयें तो उन्हें लौटा देना ।”

“वह क्यों ?”

“कहती थी, मैं तुम दोनों के मार्ग में नहीं आना चाहती, मेरा मार्ग अलग और उसका अलग है ।”

“परन्तु इतनी बड़ी भूल उसे हुई क्योंकर ?”

“मैं क्या जानूँ शायद अपनी वास्तविकता जानकर अपने आप से लज्जित है ।”

“सम्भव है...”

“इसीलिए जब मैं ने कहा दीदी अपनी माँ के यहाँ अभी न जाओ आनन्द बाबू क्या सोचेंगे तुम्हारी वास्तविकता को जान कर ।”

“तो क्या बोली वह ?” आनन्द ने पूछा ।

“कहने लगी मैं जैसी भी हूँ तुम्हारे आनन्द बाबू से बहुत अच्छी हूँ... किसी को मीठी छुरी बनकर नहीं काटती ।”

“ओह !” आनन्द दांत पीसकर चुप हो गया और चाय का प्याला शीघ्रता से पी कर बाहर जाने लगा । बेला ने पूछा, “कहाँ चल दिए ?”

“संध्या के पास...”

“ठहरो... मैं भी चलती हूँ तुम्हारे संग ।”

आनन्द ने कोई उत्तर न दिया और तेज पग उठाता बाहर सड़क पर आ पहुँचा । बेला भी तुरंत उसके साथ आकर चुपके से गाड़ी की पिछली सीट पर आ बैठी ।

“वह कहाँ है, क्योंकर पता चलेगा उसका ?”

“निशा के यहाँ से सब पता चल जायेगा ।” बेला ने चिन्तित मन से उत्तर दिया ।

निशा के घर पहुँचने पर उन्हें यह जानकर सांत्वना हुई कि संध्या अभी तक वहीं है। आनन्द चुपके से उसके समीप जा पहुँचा जो उस समय कोई पत्रिका देखने में तल्लीन थी। आनन्द को देखते ही क्रोध से उसका मुख चमक उठा। निशा दोनों को अकेले में छोड़ बाहर चली आई।

“संध्या...” उसके मुख से क्रोध और चिन्ता के चिन्हों को पढ़ता हुआ आनन्द बोला।

“कहिए... क्या कहना है आपको ?” कठोर स्वर में संध्या ने पूछा।

“कुछ अधिक नहीं... केवल इतना कि जो पग तुम उठा रही हो वह कुछ अच्छा नहीं।”

“इसमें आपको क्या ?”

“ठीक है... मुझे कुछ नहीं... किन्तु सोचूँ तो बहुत कुछ है।”

“बहुत कुछ क्या ?”

“तुम मेरी होने वाली जीवन साथी हो।”

“ओह ! तो आप कोई नई चाल चलने आए हैं, परन्तु मे अब आपके फन्दे में नहीं आ सकती।”

“मैं ठीक प्रकार समझता हूँ कि तुम मुझे यूँ क्यों कह रही हो... तुम्हारे मन में यह व्यर्थ सन्देह अच्छा नहीं।”

“कोई सफाई देने आए है आप अब...?”

“हां यही कहने आया हूँ कि मेरा और बेला का कोई ऐसा सम्बन्ध नहीं जो तुम हर समय जली भुनी रहती हो...”

“यह आप से किस ने कहा कि मैं आप से जली भुनी रहती हूँ।”

“तुम्हारी सन्देह भरी दृष्टि ने जिसके पढ़ने में मैंने भूल नहीं की।”

“और यदि आपकी बहकी आँखों में मैंने भी कुछ देखा हो तो...”

“क्या ?”

“कि आप चोरी छिपे बेला से प्यार करते हैं...”

“संध्या…” वह चिल्लाया, “हाँ, हाँ ग्यार करता हूँ… कहो क्या कहना है तुम्हें।”

“यही कि आप मुझे तो धोखा दे चुके अब उसका जीवन नष्ट न कीजिएगा।”

“तुम मुझे इतना गिरा हुआ समझती हो, यह मैं आज जान पाया… शायद तुम मेरे मन की दशा न जान सकोगी… मैं तो अपनी मान मर्यादा का विचार न करते हुए तुम्हें उन गलियों से लेने जा रहा था जहाँ भले आदमी पाँव तक नहीं रखते।”

“रहने दीजिए अपनी भलमंसी को… और कृपया चले जाइये यहाँ से।”

“मैं जाता हूँ संध्या परन्तु किसी दिन तुम अवश्य पछताओगी। मैं यह न जानता था कि ‘नीलकंठ’ के पवित्र प्रेम की देवी इतनी गिरी हुई है, पर तुम्हारा क्या दोष… आखिर हो किस की बेटी…”

संध्या यह सुनते ही बौखला उठी। इस से पूर्व कि वह इसका कोई उचित उत्तर दे पाती आनन्द नीलकंठ वाला हार फर्श पर पटक तेजी से बाहर निकल गया।

बेला सड़क पर गाड़ी में बैठी बड़ी बेचैनी से आनन्द के लौटने की प्रतीक्षा कर रही थी। हर क्षण की देरी उसकी व्याकुलता को बढ़ा रही थी। यदि उसका भेद खुल गया तो क्या होगा…

आनन्द को क्रोध में भरे हुए आते देख कर प्रसन्नता की एक हल्की सी तरंग उसके मुख पर उत्पन्न हुई पर उसके समीप आते ही उसने अपने आप को गम्भीर बना लिया।

आनन्द क्रोध में भरिया हुआ आया और सीट पर बैठ कार को स्टार्ट करने के लिए चाबी निकालने लगा। बेला झट से अगली सीट पर आई और सहानुभूति जताने के लिए उसके माथे से स्वेद बिन्दु साफ करने लगी। कुछ समय चुप रहने के बाद बेला ने भिन्नकते हुए प्रश्न किया—
“क्यों कुछ पता चला?”

“वह यहीं है...” क्रोध में उत्तर देते हुए आनन्द ने गाड़ी चला दी ।

“क्या कहती थी ?” बेला ने नम्रता से पूछा ।

“बन्द करो यह बकवास...मे उसके विषय में कुछ नहीं सुनना चाहता ।” उसने गाड़ी की गति और तेज कर दी । बेला उसके इस कठिन उत्तर और गाड़ी की तीव्र गति से उसके मन में बढ़ते हुए तूफान का अनुमान लगा रही थी । वह उसकी चिन्ता को भली प्रकार समझती थी । आज दोनों में बड़ा भगड़ा हुआ है । वह सोचने लगी तूफानों में कई घर उजड़ जाते हैं और प्रायः कई उजड़े हुए घर बस भी जाते हैं...उसे इस अवसर को जाने न देना चाहिए ।

वह यही बातें सोच रही थी कि गाड़ी शहर से निकल कर समुद्र तट पर जा पहुँची । गाड़ी को एक स्थान पर खड़ा करके आनन्द बाहर निकला और चुपचाप समुद्र की ओर हो लिया । बेला भी उसके पीछे चल पड़ी ।

यह वह स्थान था जहाँ एक साँझ संध्या और उमने मिलकर अपने प्रेम को नीलकंठ का नाम दिया था और सदा एक दूसरे के रहने का प्रण किया था । वहाँ पहुँच कर उसने उछलती हुई लहरों को देखा जो डूबते हुए सूर्य को अन्तिम प्रणाम करने को बार-बार उठ रही थी ।

“भूठी कहीं की...” वह स्वयं क्रोध में घबड़ाया ।

“कौन ?” बेला ने पीछे से कंधे पर हाथ रखते हुए पूछा ।

“तुम्हारी दीदी...बेला, उसे मैं कितना अच्छा समझता था...न जाने उसे क्या हो गया है ?”

“अब जाने दो इन बातों को...जीवन वह है जो नदी के बहाव की भाँति किनारों को छोड़ बढ़ती चली जाती है ।”

“किन्तु जब वह ऐसे स्थान पर आ पहुँचे जहाँ दूर तक कोई किनारा न मिले तो...”

“ऐसा नहीं होता...जब संकीर्ण और पथरीले किनारे छोड़ नदी खुले मैदान में आती है तो उसे उन से कहीं अच्छे नर्म और कोमल मिट्टी

के किनारे मिलते हैं जिन्हें वह जब भी चाहे काट कर बहती चली जाए।”

दोनों बहुत समय तक चुपचाप अपने-अपने विचारों में डूबे रहे। जब आनन्द ने मुड़ कर बेला की आँखों में देखा तो उनमें वही उन्माद और चंचलता थी जिसका अनुभव वह खंडाला की घाटियों में कर चुका था। वह समझ गया कि बेला की पथरीले और कोमल किनारों की तुलना का क्या अर्थ है। वह सोचने लगा, इसमें भूठ ही क्या है...संध्या का सहारा मानो किसी पत्थर का सहारा था जिसके साथ केवल सिर ही पटखा जा सकता था...और बेला...इसका विचार आते ही उसके होठों पर मुस्कान की हल्की-सी रेखा दौड़ गई। उसने फिर बेला की उन्माद भरी आँखों में भाँका और हृदय में भावना के उठते हुए तूफ़ान को शान्त करने के लिए उसने खीचकर बेला को अपनी बाँहों में भींच लिया—यह दूसरा किनारा था...नर्म और कोमल...

दोनों के दिलों की धड़कनें एक हो गईं...एक ओर दूर किसी मन्दिर में घण्टियाँ बज रही थी और दूसरी ओर समुद्र में लहरों के टकराने का शोर...दोनों एक बार फिर खो से गए...

“बेला”, आनन्द ने दबे स्वर में कहा, “यह वही स्थान है जहाँ एक दिन संध्या ने मुझसे प्रेम निबाहने का प्रण किया था।”

“और यही प्रण आज मैं करती हूँ।”

“कहीं यह प्रण भी...”

“ऊँ, हूँ...” बेला ने आनन्द का मुँह अपनी हथेली से बन्द करते हुए कहा, “ऐसा मत कहिए।”

“कितना अन्तर है तुम दोनों में...मैं कितना ग़लत समझा था तुम्हें।”

“अब छोड़िए बीती बातें...और चलिए घर रात हो गई—”

आनन्द ने बेला का हाथ पकड़ा और उसे कार तक सहारा दिए गया। बेला मन ही मन अपनी सफलता पर प्रसन्न थी और आनन्द

संध्या के प्रेम को बिसरा कर मन में बेला का प्रेम भग्ने का प्रयत्न कर रहा था ।

वहाँ से वह सीधा राय साहिब के यहाँ गया और बेला को बाहर ही गेट पर छोड़ कर लौट गया । उसने चलते समय बेला को वचन दिया कि सवेरे आकर वह सब बात राय साहिब से कहकर बेला से विवाह का निर्णय कर लेगा ।

घर लौट कर जब उसने बैठक में पाँव रखा तो क्षण भर के लिए वह चौंक कर ठिठक सा गया । सामने सोफे पर निशा बैठी हुई उसकी प्रतीक्षा कर रही थी । अपनी घबराहट पर अधिकार पाते हुए उसने पूछा—

“निशा...तुम...यहाँ...इस समय...”

“जी...बड़े समय से आपकी प्रतीक्षा कर रही हूँ ।”

“कहो...” उसने असावधानी से अपना कोट उतारते हुए पूछा ।

‘आज्ञा हो तो कुछ कह लूँ...’

“तुम्हारी सहेली ने कुछ छोड़ा हो तो उसे तुम पूरा कर लो ।”

“आप ने ठीक समझा...दोनों की अधूरी बातों को मैं पूरा करने आई हूँ ।”

“मैं समझा नहीं ।”

“सब समझाए देती हूँ...आप बैठिए...”

आनन्द चुपचाप उसके पास आ बैठा ।

“अब संध्या का क्या होगा ?” निशा ने नम्रता से पूछा ।

“मैं क्या जानूँ...सहेली तुम्हारी है...घर तुम्हारे...अपनी इच्छा की स्वयं मालिक है जो चाहे निर्णय करे...मैं कौन हूँ जो टीका टिप्पणी करूँ...” वह एक ही साँस में कितनी बातें कह गया ।

“आप स्त्री के मस्तिष्क को तो खूब समझते हैं, कभी उसके हृदय को समझने का प्रयत्न भी किया आपने...”

“ऐसे हृदय का क्या करूँ जो चंद ही क्षणों में पूरे जीवन का अन्त करदे ।”

“शायद आप यह नहीं जानते कि आपकी आशाओं को निराशा में बदलने से पहले उसने अपनी अभिलाषाओं का गला स्वयं दबा दिया है ।”

“केवल अपनी व्यर्थ बातों के कारण... अब तुम ही कहो कि मैं यह सब कहाँ तक सहूँ ।”

“क्या कह दिया है उसने ?”

“वह मेरी हर बात पर सन्देह करती हैं... तुम ही कहो क्या यह सब उचित है... उसे मेरा और बेला का आपस में बोलना भी अच्छा न लगे... आखिर यह क्यों ?”

“इसलिए कि वह आप से कहीं अधिक बेला को समझती है ?”

“यही कि वह उसकी सगी बहिन नहीं और इस भेद को खोलने वाली भी वही है ।”

“नहीं, बल्कि वह एक उमड़ती घटा है जो किसी समय भी आपको लपेट में ले सकती है”

“जैसे मैं कोई बालक हूँ... और यदि वह कुछ अनुभव करती है तो भुभु से स्पष्ट रूप में क्यों नहीं कहती । बेला के मन में मैल उत्पन्न करने की क्या आवश्यकता थी ।”

“यदि आप अपने मन की दशा उससे नहीं कह सकते तो वह क्यों-कर कहे ?”

“मैंने क्या नहीं कहा ?”

“यही कि आप उसे एक दिन अपने संग खंडाला ले गए थे ।”

खंडाला का नाम सुनते ही आनन्द के पाँव तले की धरती खिसक गई और उसका मुख सफेद पड़ गया । वह निशा की ओर देखता का देखता रह गया ।

“खंडाला... यह तुमसे किसने कहा ?” फूले हुए साँस से उसने कहा ।

“आप ही कहिए क्या यह झूठ है ?”

“सम्भव है झूठ ही हो परन्तु यह तुम से कहा किसने ?”

“आपके मन ने... आपकी भटकती आँखों ने...बेला के उमड़ते यौवन और सौन्दर्य ने...”

“यह सब झूठ है ।”

“परन्तु वह तसवीरें कभी झूठ नहीं कह सकतीं जो आपके रोमान्स की जीवित भक्तियाँ हैं ।”

निशा वी बातों ने आनन्द पर मानों घड़ों पानी डाल दिया । वह झूठ को कब तक छिपा सकता था, और उसने इस चोरी को स्वीकार कर लिया ।

जब उसे यह पता चला कि यह बातें बेला ने ही संध्या से कही हैं तो वह क्रोध में जलभुन गया । ‘तो यह सब आग उसी की लगाई हुई है’, वह घृणा से दाँत पीसने लगा । वह सोचने लगा, जो बातें उसने संध्या के विरुद्ध उससे कही थीं वह भी सब असत्य हों और यह सब उसने उसे चले जाने के लिये कह डाली हों ।

“अब आप ही बताइये यह सब जानकर संध्या की क्या दशा हुई होगी...आखिर वह स्त्री है ।”

“मैं बहुत लज्जित हूँ निशा...यह अच्छा ही हुआ जो तुमने सब मुझे बतल दिया ।”

“यही बार-बार मैंने संध्या से कहा पर वह मन ही मन जलती रही...”और उससे चोरी मुझे यहाँ आकर आपको सूचित करना पड़ा ।”

“तुमने अच्छा किया ।”

“अब क्या होगा ?”

“सब ठीक होगा...जाओ मेरी ओर से संध्या से कहना कि मुझे क्षमा कर दे...और हाँ तुम दोनों कल सवेरे ही घर आ जाना...राय साहिब के सामने इस बात का निर्णय हो जायगा।”

“किस बात का?”

“कि मैं संध्या से शीघ्र विवाह करना चाहता हूँ।”

आनन्द की यह बातें सुनते ही निशा प्रसन्न हो गई...उसका यहाँ आना सफल हो गया। वह शीघ्र यह सूचना संध्या को देने के लिये बाहर निकल गई।

आनन्द बेला की चाल के विषय में रात भर सोचता रहा। इसी चिन्ता में वह सो न सका...खांडला के दृश्य उसकी आँखों के सामने आ आकर भयानक रूप धारण करते रहे...किसी अज्ञात भय से वह कांप-उठता...कहीं बेला उसकी निर्वलता का अनुचित लाभ न उठा ले और वह सबकी दृष्टि में गिर जाय। उसका शरीर पसीने से लत-पत हुए जा रहा था।

सवेरे होते ही वह सीधा राय साहिब के यहाँ पहुँचा। आज वह अपना निर्णय कर ही देना चाहता था।

वहाँ राय साहिब और मालकिन चिन्ता में खोये गोल कमरे में बैठे थे। संध्या बालकनी की सीढ़ियों पर सिर झुकाये बैठी थी। कुछ देर तक तीनों में से किसी ने आनन्द को न देखा। हर ओर चुप्पी सी थी।

“ओह...आनन्द...आओ...” राय साहिब ने चौंकते हुए कहा और कुरसी से उठकर उसकी ओर बढ़े। आनन्द लम्बे-लम्बे डग मारता उनके पास आ गया और कनखियों से संध्या को देखने लगा जो अचानक उसे देख मुंह फेर कर खड़ी हो चुकी थी।

“कहिये...सब ठीक तो है...” आनन्द ने कुरसी पर बैठते हुए पूछा।

किसी के उत्तर न देने पर आनन्द ने अपने वाक्य को दोहराया ।

“आनन्द ! मैं अभी तुम्हारे यहाँ ही जा रहा था ।” राय साहिब नम्रता से बोले ।

“कहिये...मैं स्वयं आ गया ।”

“संध्या अभी अभी आई है ।”

“जी...वह तो मैं देख रहा हूँ ।”

“और निर्णय चाहती है ।”

“निर्णय ?” वह तनिक घबरा गया पर संभलते बोला, ‘कैसा निर्णय ?’

“अपने जीवन का...यह तो तुम जानते ही हो कि वह मेरी लड़की नहीं .”

“तो क्या हुआ...मेरा निश्चय अटल है और फिर भी यदि वह ऐसी बातें सोचे तो उसकी भूल है...आपने तो उसे अपनी लड़कियों से कम नहीं चाहा...वह कौन सी वस्तु है जो आपने उसे नहीं दी ।”

“हां । आनन्द ! यह सब ठीक है परन्तु जो मूर्खता बेला से हुई उसका संध्या को भी बुरा न मानना चाहिए...आखिर वह अनजान है उसकी छोटी बहिन है...यदि यह भेद जानने पर उसने किसी से कह भी दिया तो इसे बड़ी होने के नाते उसे क्षमा कर देना चाहिये ।”

“तो क्या दोनों में कोई झगड़ा हुआ है ?”

“यह तो इसी से पूछो...जाने दोनों में क्या क्या बात हुई...यदि इससे कहूँ तो बिगड़ती है उससे कहूँ तो घर सिर पर उठा लेती है...दो दिन से निशा के घर पड़ी है . यह भी कोई अच्छी बात है...सुनने वाले क्या कहेंगे...” मालकिन बीच में बोली ।

“हूँसेगे...राय साहिब का उपहास करेंगे कि उसका बोझ उठाने से घबराते हैं...” राय साहिब ने चिन्तित स्वर में कहा ।

“तो आप सब मिलकर इस कथा को समाप्त ही क्यों नहीं कर देते” संध्या मुँह फेर कर चिल्लाई ।

“क्या चाहती हो तुम ?” आनन्द ने धीमे स्वर में मुस्कराते हुए कहा ।

“बेला का कहना है कि आप मुझसे घृणा करते हैं ।”

“भला वह क्यों ?”

“इसलिये कि मैं किसी आवारा की सन्तान हूँ ।”

“अच्छा ! और क्या कहती थी वह ?”

“कि आपने उसे विवाह का वचन दिया है ।”

“विवाह ?...” राय साहिब और मालकिन के मुँह से एक साथ निकला और वह आश्चर्य से संध्या और आनन्द को देखने लगे जो स्वयं यह शब्द सुनकर तनिक काँप गया । आनन्द ने अपनी घबराहट को शीघ्र ही मुस्कराहट में बदलते कहा—

“बस इतनी सी बात... अभी निर्णय किये देता हूँ... राय साहिब किसी पण्डित को बुलवाइये .”

“किसलिये ?”

‘महूरत निकलवाइये... मैं संध्या से शीघ्र ब्याह करना चाहता हूँ ।’

संध्या यह सुनते ही सकुचा गई और फिर मुँह फेर कर दीवार की ओर देखने लगी । राय साहिब और मालकिन हँसने लगे ।

“यह भी गुड़िया की लगन... है... जो .” वह हँसी रोकते हुए वाक्य पूरा भी न कर पाये कि आनन्द ने बीच में टोक दिया—

“भाजा हो तो जरा बेला से मिल आऊँ ।”

“यह भी कोई पूछने की बात है... जाओ उसे भी मना लाओ... ऐसी बिगड़े-दिल साली भी भाग्य से मिलती है ।” राय साहिब ने उत्तर दिया और मालकिन की ओर देखकर मुस्कराने लगे ।

आनन्द लपक कर सीढ़ियाँ चढ़ कर बेला के कमरे की ओर बढ़ा । बेला निढाल बिस्तर पर लेटी हुई थी । आहट पाते ही उसने गर्दन उठाई और आनन्द को देखकर अपनी बिखरी दशा ठीक करने लगी ।

उसकी आँखों में क्रोध भनक रहा था। इससे पहले कि वह कुछ कहती आनन्द ने द्वार बन्द कर लिया और बोला —

“कहो बेला...तुम्हारा क्या निर्णय है ?”

“निर्णय ...कैसा निर्णय ?” उसने असावधानी से पूछा।

“आज ही निर्णय का दिन है और नीचे सब मेरा शब्द सुनने को व्याकुल हैं।”

“मैं नहीं समझी...यह सब...”

“तो समझ लो... मैं संध्या से विवाह कर रहा हूँ।”

यह सुनते ही आवेश में वह काँपने लगी मानों किसी ने उसके सीने पर विष भरा तीर चुभो दिया हो।

“आप बहुत शीघ्र अपने निर्णय बदलते हैं।”

“किन्तु, यह मेरा अन्तिम निर्णय है...अब इसे कोई बदल नहीं सकता।”

“आपकी हर बात अन्तिम होती है...कान के कच्चे जो हैं...जिसने भड़का दिया उसी के हो रहे।”

“किन्तु अब तुम्हारी कोई चाल नहीं चनेगी...मैं यह न जानता था कि तुम आग पर तेल डालना जानती हो।”

“और मैं यह न जानती थी कि आपका प्रेम एक धोखा है।”

“कैसा प्रेम...कैसा धोखा...तुम जबरदस्ती मेरे गले आ पड़ो तो मैं क्या करूँ ?”

“अब यूँ ही कहोगे...धोखा देने के पश्चान सब यूँ ही कहते हैं।”

“धोखा मैंने दिया या तुमने...बलपूर्वक मेरी अतिथि बन बैठी। अपने हाव-भाव से मुझे अपनी ओर खींचा और मेरी निर्बलता से लाभ उठाने के लिये तस्वीरों के रूप में हमारे मिलन के प्रमाण रख लिये... तुमने समझा कि इन चालों से तुम मेरे प्रेम को जीत सकोगी...परन्तु यह असम्भव है...तुम जैसी कपटी मेरे मन में घर नहीं कर सकती... कभी नहीं।”

“नहीं... ऐसा मत कहो आनन्द... प्रेम में मानव क्या नहीं करता ।” वह आँखों में आँसू भर लाकर बोली ।

“प्रेम में मानव सब कुछ करता है... कभी-कभी निराश होकर विप खाकर आत्महत्या भी कर लेता है ।”

“ठीक है ऐसा ही होगा...” यह कहते हुये उसने तकिये के नीचे से एक छोटी सी शीशी निकाली और उसका कार्क खोल कर मुँह की ओर ले जाने लगी ।

“यह क्या ?” आनन्द एकाएक उसके पास आकर बोला ।

“विष... मेरा अन्तिम साधन...”

“तुम पागल हो ? कभी ऐसा भी किया जाता है ।”

“अभी आप ही तो कह रहे थे कि विष खाकर आत्म-हत्या कर लूँ ।”

“कह रहा था क्रोध में आकर... उठो मूर्ख न बनो . वास्तविकता को समझने का प्रयत्न करो... मैं तुम्हारे लिये अपने से बढ़कर धनी, सुन्दर और भला वर दूँ दूँगा... यह प्रेम केवल मायाजाल है ।”

“बालकों की भांति बहला रहे हैं गुंभे ।”

“हाँ, तुम बालिका ही तो हो वरना तुम्हारी भूलें इतनी शीघ्र क्षमा क्यों कर देता... उठो, मेरी अच्छी बेला ।” आनन्द ने प्यार से उसका हाथ पकड़ा और उसे उठाने लगा ।

“आनन्द ।”

“क्या ?”

“तुम मुझे बच्चा समझते हो, परन्तु जानते हो मैं क्या हूँ ?”

“क्या हो ।”

“एक डूबती हुई नाव... मुझे तुम्हारे सहारे की आवश्यकता है”, वह उससे लिपटते हुए बोली... “मैं अब बच्चा नहीं... तुम्हारे बच्चे की माँ बनने वाली हूँ ।”

“बेला !”...उसे झटके से अलग करते हुए आनन्द चिल्लाया, नहीं...यह झूठ है...यह कभी नहीं हो सकता ।”

“नहीं...आनन्द...यदि ऐसी बात न होती तो मैं संध्या और तुम्हारे बीच यूँ दीवार खड़ी करने का प्रयत्न न करती ।”

“नहीं, नहीं...यह तुम क्या कह रही हो...”

“देखो...यह सब...” उसने पर्स खोलकर दो चार छोटी सी शीशियाँ निकालीं और आनन्द को दिखलाते बोली, “यह मेरी मृत्यु के चिन्ह हैं । तुम्हारा एक छोटा सा निर्णय मेरे जीवन या मृत्यु का कारण बन सकता है ।”

आनन्द ने कोई उत्तर न दिया । उसकी आँखों में भय स्पष्ट था । वह काँपते हुए उठा और बाहर चला आया । बेला ने दो एक बार पुकारा भी पर उसने कोई ध्यान न दिया ।

नीचे गोल कमरे में राय साहिब और मालकिन उत्साह पूर्वक उसकी ओर बढ़े पर उसके मुख पर चिन्ता के गहरे चिन्ह देखकर कोई प्रश्न न कर सके । आनन्द बिना रुके हुए लम्बे-लम्बे डग भरता बाहर निकल गया । राय साहिब विस्मित से मूर्ति बने खड़े रहे । संध्या राय साहिब के संकेत पर उसके पीछे हो ली ।

आनन्द अभी गाड़ी स्टार्ट न कर पाया था कि संध्या ने पहुँच कर कहा—

“बिना मिले और कुछ कहे जा रहे हो ।”

“संध्या !”

“जी...”

“तुम्हें मेरे निर्णय की प्रतीक्षा थी न ।”

“जी...”

“तो सुनो मुझे सदा के लिए भूल जाओ ।”

“यह आप क्या कह रहे हैं ?” संध्या और पास आकर बोली ।

“ठीक ही कह रहा हूँ...मेरा प्रेम धोखा ही था उसकी लपेट में तुम्हारे पवित्र प्रेम को नहीं लेना चाहता...”

“यह क्या कह रहे हैं आप ? आप कहीं...”

“मन छोटा न करो । संसार बहुत बड़ा है...हमारे विचारों से भी बहुत बड़ा...कोई और आसरा ढूँढ लो जहाँ तुम्हें सुख और शान्ति मिल सके...मुझे एक छली और भूठा समझकर सदा के लिये बिसरा दो ।”

आनन्द की बातों में आज एक दृढ़ता थी—यह सब बातें उसने बिना रुके एक ही सांस में कह डाली और संध्या की बात सुने बिना गाड़ी स्टार्ट कर दी । एक भटका लगा और वह लड़खड़ाते हुए बची । एक शोर हुआ और घण्टियों की आवाज वातावरण में गूँजने लगी...दूर सड़क पर फायरब्रिगेड का इंजन कही तेजी से जा रहा था...कहीं आग लग गई थी...संध्या के मन में भी एक आग सुलग रही थी जिसे उसके अतिरिक्त और कोई अनुभव न कर सका...आनन्द के यह शब्द अभी तक उसके कानों में गूँज रहे थे...संसार बहुत बड़ा है...हमारे तुम्हारे विचारों से भी बहुत बड़ा...यह लम्बी चौड़ी सड़कें...बड़ी-बड़ी इमारतें...गाड़ियाँ, लाखों करोड़ों की भीड़...पर इन सब में एक व्यक्ति भी तो ऐसा न था जो उसे शान्ति दे सकता ।

कल्पना में बढ़ती हुई वह उस सराय तक जा पहुँची जहाँ उसकी माँ फटे पुराने ढपड़े पहिने लोगों को कहवा पिला रही थी । वह एक आन्तरिक भय से काँप उठी और बे-अख्तियार भीतर की ओर भागी ।

ज्यों-ज्यों रात का अन्धेरा बढ़ता गया बाजार की रौनक कम होती गई। लोग दिन की थकावट दूर करने को आने-अपने बसेरों में जा छिपे। बस्ती पर मौन छााने लगा। इस मौन को तोड़ती हुई एक टैक्सी सराय रहमतउल्लाह के द्वार पर आ रुकी।

संध्या टैक्सी का भाड़ा चुका कर सराय की ओर हो ली। पल भर के लिये वह उसके ऊँचे और पुराने दरवाजे के बाहर रुकी और चारों ओर एक दृष्टि दौड़ाई। फिर डरते-डरते उसने भीतर प्रवेश किया। अंधेरे में आते ही उसे बहुत से लोगों का मिला-जुला शोर सुनाई दिया। वह घबराई तो परन्तु हृदय को हठ करके आगे बढ़ी—वह ऐसे संसार में जा रही थी जहाँ वह अपनी कामनाओं और आशाओं को कुचल कर रख देगी।

तम्बाकू के धुँएँ और गली की सड़ांध ने संध्या का स्वागत किया। इस मिली-जुली दुर्गंध से उसे खाँसी आ गई। हाल में पाँव रखते ही वह दीवार के सहारे सहम कर खड़ी हो गई। गंदे, जीर्ण दशा में, ताप से खांसते हुए लोग असभ्यता और असावधानी से हाल में पड़े हुए ठहाके लगा रहे थे। हाल के दूसरी ओर उसी चबूतरे पर खाना बीबी कहवा तैयार कर रही थी। उसकी फुर्ती से स्पष्ट था कि यह धंधे का सबसे व्यस्त समय था।

उसने धड़कते हुए दिल का संभाला और हाल के दूसरी ओर जाने

लगी। लोगों ने आसपास के गंदे वातावरण में जब एक सुन्दरी को देखा तो आश्चर्य में सब उसकी ओर देखने लगे... ठहाकों का शोर रुक गया। एक युवक तो लड़खड़ाता हुआ उसके सामने आ कर खड़ा हो गया और बोला, “अरे माधो... देख तो... कोई मेम साहिब रास्ता भूल कर हमारी सभा में आ गई हैं।”

“अरे पागल कोई सपना देख रहा होगा।” माधो ने अफ्रीम की चुटकी लगाते हुए लेटे-लेटे ही उत्तर दिया। युवक ने माधो की बात सुन कर ‘हाँ’ में सिर हिला दिया और समीप से धूर धूर कर संध्या को देखने लगा। उसके मुँह से तम्बाकू की गंदी बास आते ही संध्या ने अपना चेहरा दूसरी ओर कर लिया। युवक कथई दाँतों की बतीसी निकाल हँसने लगा। संध्या ने कुछ साहस से काम लिया और एक थप्पड़ उसे दे मारा। हाल ठहाकों से गूँज उठा मानो किसी मौन चलचित्र में किसी विशेष दृश्य को देखकर देखने वाले खिलखिला उठे हों। इसके साथ ही लोग हट कर एक ओर हो गये और चबूतरे तक रास्ता साफ़ हो गया। खाना बीबी उस समय किसी काम से भीतर जा चुकी थी और चबूतरे पर एक बड़ा भद्दा व्यक्ति खड़ा ध्यानपूर्वक उसे देख रहा था। बाकी व्यक्ति उसे संध्या को देखते हुए देखकर चुप हो गये जैसे वह वह उनका नेता अथवा सराय का मालिक था।

‘रुक क्यों गईं... आगे आओ... तुम्हें कोई कुछ नहीं कहेगा,’ मोटी और भद्दी आवाज़ में उसने संध्या को अपने समीप आने का संकेत करते हुए कहा। वह चुपचाप मूर्ति सी बनी उसकी ओर बढ़ने लगी। संध्या ने जब ध्यान पूर्वक उस व्यक्ति को देखा तो भय से उसका सांस रुक गया। वह एक आँख से काना और एक टांग से लंगड़ा था और उसके मोटे और टेढ़े दाँत होंठों से बाहर निकले हुए थे... जान पड़ता था जैसे कोई राक्षस इन्सानों में आ खड़ा हो।

“कौन हो तुम ?” उसने संध्या को धूर कर पूछा।

“मुझे खाना बीबी से मिलना है।”

‘जाओ, भीतर जाओ...’

संध्या अपने स्थान पर हिले बिना खड़ी रही। वह अकेली सराय के भीतर किसी कमरे में जाने से डर रही थी। अभी वह इस उलझन में ही थी कि जाए या न जाए कि खाना बीबी स्वयं बाहर आ गई।

दोनों एक दूसरे को मौन दृष्टि से काफी समय तक देखती रहीं, मानों आँखों द्वारा हृदय की गहराइयों में कुछ टटोल रही हों। एकाएक ही खाना बीबी चिल्ला उठी—

“संध्या...मेरी बेटी...”

“हाँ संध्या...परन्तु तुम्हारी बेटी नहीं...मुझे अपनी बेटी मत कहो...”

खाना बीबी ने एक दृष्टि सराय में बैठे लोगों पर डाली और बोली, “भीतर आ जाओ...”

वह खाना बीबी के पीछे-पीछे कमरे के भीतर चली गई। खाना बीबी ने भीतर से क़िवाड़ बंद कर लिया और कम्पित स्वर में बोली—
“तुम यहाँ?”

“तुम्हें देखने चली आई थी...किस आनन्द में हो।”

“बेटी...ऐसा न कहो...”

“तुम्हारी बेटी कहलवाने में मुझे लज्जा आती है।”

“यह तुम कह सकती हो...मैं नहीं।”

“तुम क्यों कहने लगी...जानती हो आज मैं अपना सब कुछ खो कर आई हूँ।”

“क्या?”

“अपना सब कुछ,” वह दोहराते बोली, “जब संसार वाले जान गये कि मैं राय साहिब की नहीं एक नीच वेश्या की लड़की हूँ।”

“संध्या!” खाना चिल्लाई, “निर्धनता से ढकी इस इज्जत को नीच न समझो...”

“आँखों से देखते हुए क्यों चुप रहूँ... यदि निर्धन ही थीं तो मजदूरी करके पेट पाल लेतीं, किसी मन्दिर में जोगिन बन जातीं... यूँ सराय में बैठ गंदे और आवारा लोगों का मनोरंजन न करतीं...”

“अबोध लड़की !” किसी की भारी और डरावनी आवाज ने उसे चौंका दिया । द्वार में वही एक आँख वाला लंगड़ा खड़ा था जो आँखों में चिंगारियाँ लिये संध्या को देख रहा था । खाना बीबी ने बढ़कर धीरे से परिचय कराते हुए कहा —

“नन्हें पाशा... यह मेरी लड़की है संध्या...”

“ओह... तो इसी लिये अपनी माँ को वेश्या कह रही है... जी चाहता है इसकी जुबान खींच लूँ ।”

संध्या यह सुनते ही सटपटा गई । खाना बीबी के मुख पर डर और चिंता स्पष्ट थी जिससे जान पड़ता था कि यह काना और लंगड़ा व्यक्ति सराय में एक विशेष महत्व रखता है । उसने अपने मन को कुछ दृढ़ किया और मुँह फेर कर उसे घृणा से देखते चिल्लाई —

“हाँ खींच लो इस जुबान को इसलिए कि वह सच न बोल सके... नोंद लो इन आँखों को कि यह अन्याय न देख सके ।”

संध्या की यह बात सुन नन्हें पाशा के भयानक चेहरे पर मुस्कराहट आ गई और वह अपने मोटे और भद्दे होठों को खोलते बोला, “शाबाश झूठ और अन्याय यह दोनों तुमको पसन्द नहीं... यह जानकर हमें अत्यंत प्रसन्नता हुई... परन्तु इनको परखने के लिये अक्ल से काम लेना चाहिये ।”

“अक्ल... सच... झूठ... क्या आप मेरी परीक्षा लेने आये है ?”

“हम क्या परीक्षा लेंगे... भाग्य स्वयं मानव को परीक्षा है ।”

“किन्तु मुझे किसी के भाषण की आवश्यकता नहीं ।”

“तो तुम यहाँ क्या करने आई हो ?”

संध्या निरुत्तर हो गई और विस्फुरित दृष्टि से पाशा को देखने लगी जिसने ऐसा प्रश्न किया था । आखिर वह किस उद्देश्य से यहाँ

आई है...किस निश्चय से वह इस भयानक स्थान पर चली आई... क्या माँ के साथ अब उसे भी ऐसा ही जीवन काटना होगा...लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे...वह ऐसी ही बातें सोचे जा रही थी। उसकी जुवान पर मानो किसी ने ताला लगा दिया हो। नन्हे पाशा के शब्दों ने फिर मौन को भंग कर दिया...वह कह रहा था—

“मैं जानता हूँ तुम यहाँ क्यों आई हो... अपनी दुखिया माँ को वेश्या कहने... उसकी निर्धनता का उपहास उड़ाने... उसकी वर्षों की दबी हुई आशाओं को जगाने... उसके पुराने घावों को कुरेदने,” वह क्षण भर सांस लेने के लिये रुक गया और फिर कहने लगा, “इसलिये कि तुम पढ़ीलिखी हो... अच्छे वस्त्र पहनती हो... साफ़ सुथरे वातावरण में पली हो... भाग्य ने तुम्हारे पाँवों में फूल बिछाये हैं कांटे नहीं... परन्तु यह अधिकार तुम्हें किसने दिया कि आकर किसी की शान्ति भंग कर... उसकी आशाओं को लूटो... बिना सोचे समझे किसी निर्दोष को आ कर वेश्या कह दो... यही तुम्हारी शिक्षा है... यही तुम्हारा सभ्य वातावरण कहता है... यही तुम्हारे धन का घमण्ड है... हम जानते हैं कि तुम हम से सुन्दर संसार में बसती हो; परन्तु हम भी एक सुन्दरता रखते हैं... हमारा भी अपना सुनहरा संसार है... अपने मन का संसार... वह बस्तु जो तुम लोगों के पास नहीं...” कमरे में मौन छा गया, संध्या स्थिर बनी खड़ी थी... नन्हे पाशा का हर शब्द उसके मस्तिष्क पर हथौड़े की सी चोट लगा रहा था।

वह आश्चर्य में विफरित दृष्टि में इतर-उधर देखने लगी। अचानक उसकी दृष्टि दीवार पर लगी एक तस्वीर पर पड़ी जिस पर फूलों के हार थे वह ससन्न गई कि यह तस्वीर उसके पिता की थी। एक कोने में खड़ी उसकी माँ आँसू बहा रही थी जिसके माथे की घनी लकीरों में उसके दुखी जीवन की कहानी छिपी थी... वह पागलों की भाँति बड़ी और अपनी माँ के गले से लिपट गई... दोनों रो रही थीं।

नन्हे पाशा ने दोनों को एक दूसरे की बांहों में देखा तो उसकी आँखों

की कोरों में दा मोती से टिमटिमाये जिन्हें वह गिरने से पहले ही पी गया ।

जब उसे पता चला कि नन्हे पाशा उसका मामा है तो बहुत प्रसन्न हुई और अपने कहे हुए शब्दों पर पछताने लगी । लड़ाई में बेचारे की एक आँख और एक टांग चली गई और अब जीवन-यापन के लिये यह सराय चला रहा है... यह सराय उसकी पैतृक सम्पत्ति थी... इस भयानक चेहरे के नीचे वह एक प्यार भरा दिल रखता है इसीलिये सब उसे नन्हे पाशा कहते हैं । इन हालात को जानकर संध्या की घृणा सहानुभूति में बदलने लगी ।

जब वह माँ का सहारा लिये बाहर आई तो हैरान रह गई । सराय के सब लोग उसी ओर देख रहे थे और नन्हे पाशा के संकेत पर उनके सन्मुख झुक गये मानो कोई प्रजा अपनी राजकुमारी का स्वागत कर रही हो ।

बारी बारी सब चवूतरे के पास आये और खाना बीबी को बधाई देते हुए कुछ न कुछ उपहार के रूप में संध्या के पाँव में रखते गये । किसी के उपहार में चार आने, किसी के आठ आने-रुपया था और किसी का कोई छोटा सा चांदी का गहना । वह युवक जिसने संध्या को रोका था उपहार में पाँच रुपये का नोट और इत्र की शीशी उसके पाँव में रख गया ।

थोड़े ही समय में उसके पास रुपये और दूसरी वस्तुओं का ढेर लग गया । संध्या ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से अपने मामा की ओर देखा जिसने बताया कि यह सब लोग उसकी माँ के ऋणी हैं... उसके प्यार और सहानुभूति के आभारी... और यह उपहार उसकी बेटी के आने के उपलक्ष्य में दे रहे हैं ।

संध्या के मस्तिष्क में आनन्द के वह शब्द फिर गये, "संसार बहुत बड़ा है... हम और तुम से भी बड़ा... जाओ और सच्ची शान्ति खोजो..." किसी का सहारा लेकर... उसने अनुभव किया जैसे उसे आज वह सहारा

मिल गया हो...गरीबों का सहारा...जिनके मन में प्रेम का उमड़ता हुआ सागर है...जो जीवन की वास्तविक शान्ति का मार्ग बता सकेंगे... और वह अपने मन के नीलकंठ का प्यार बाँट देगी इन गरीबों में...एक नदी के समान एक स्रोत की भाँति...वह यही सोच रही थी कि माँ ने उसे पुकार कर उसके विचारों का ताँता तोड़ दिया और वह आराम करने भीतर चली गई।

खाना खाने के पश्चात जब वह माँ के बिस्तर पर लेटी तो उसे एक आन्तरिक सुख सा मिलने लगा। उसके सामने वह सब चीजें पड़ी थीं जो लोगों ने उसे उपहार में दी थीं।

उसने देखा उसके मामा खुरटि ले रहे हैं और माँ उसके साथ लिपटी मीठी नींद में खोई हुई थी। वह धीरे से बिस्तर से उठी और दबे पाँव बाहर की ओर बढ़ी। थोड़े समय पहले जहाँ शोर मचा हुआ था, अब वहाँ सन्नाटा था। चबूतरे पर से होती हुई वह उन लोगों के बीच से चलने लगी। छत से लटके तेल के लैम्प के टिमटिमाते हुए उजाले में फर्श पर लेटे आदमियों का गिरोह यूँ प्रतीत होता था जैसे पंक्तियों में लाशें बिछी हों।

वह लोग जो चंद घण्टे पूर्व उसे पशुओं से भी बुरे दिखाई दे रहे थे अब उनके प्रति उसके मन में घृणा के स्थान पर सहानुभूति थी...उनकी गंदगी और भयानकता जा चुकी थी...और वह निर्भय बेधड़क उनके बीच बढ़ी चली जा रही थी। कभी कभी किसी के खांसने से हाल गूँज उठता। सांसों में मिली जुली कही कहीं निश्वासों की आवाज भी सुनाई दे जाती। एक दो सपने में ऐसे बड़बड़ाया कि वह डर से कांप गई। अंधेरे में वह उनकी सूरतें न देख सकती थी परन्तु उनके मन खुली पुस्तक के समान उसके सामने थे...संध्या अब उन्हें समझ रही थी... उनकी जीर्ण अवस्था, सूखे हड्डियों के ढाँचे जिनमें लहू के चंद बचे हुए कण कहवे, अफीम या शराब के बिना उन्हें मृत बना कर रख देते हैं। ताप के कीड़े उन शरीरों को घुन की तरह खाए जा रहे थे।

दरिद्रता और निर्धनता की यह नंगी तस्वीरें देख कर उसकी आँखों में आँसू छलक आए। अचानक बाहरी द्वार के पास सोए हुए एक व्यक्ति ने कुत्ते की तरह भौंकना आरम्भ कर दिया जिसे सुनकर उसके पास सोए हुए कुछ व्यक्ति उठ बैठे। संध्या अँधेरे की ओट लेकर एक स्तम्भ के पीछे छिप गई। नींद में कोई चिल्लाया—“ओ पागल कुत्ते सोने भी देगा या आऊँ...”

वह अभी बात पूरी न कर पाया था कि भौंकता हुआ कुत्ता बाहर निकल गया... “बिचारा पागल हो गया है... बीवी बच्चों के गम में...”

“क्यों क्या हुआ उनको...?” संध्या एकाएक पूछ बैठी। उसकी आवाज़ सुनकर उठे हुए आदमी आँखें फाड़ फाड़ कर अँधेरे में उस ओर देखने लगे जहाँ से आवाज़ आई थी। संध्या साँस को रोक कर बिल्कुल स्तम्भ की ओट में छिप गई। कुछ समय सन्नाटे के बाद वह व्यक्ति अपने साथी से बोला—

“मुन्तू ! यूँ लगा जैसे कोई स्त्री मुझ से पूछ रही हो कि उनको क्या हुआ ?”

“किनको...?” उसने असावधानी से पूछा।

“पागल कुत्ते के बीवी और बच्चों को।”

“अबे, कोई सपना देख रहा होगा तेरी तो सूरत से स्त्री कोसों दूर रहती है।”

“अरे जा... मज़तूँ की ओलाद...” वह बड़बड़ाया और चादर तान कर लेट गया।

संध्या ने शान्ति की साँस ली और दबे पाँव अपने कमरे में लौट गई। उसकी माँ और मामा अभी संसार से बेखबर सो रहे थे जैसे आज कई वर्षों के पश्चात् उन्हें मुख-चैन की नींद मिली हो। संध्या चुपके से बिस्तर पर जा लेटी... उसकी आँखों में आज नींद न थी... वह आज एक नए संसार में पाँव रख रही थी।

लड़कियाँ जीवन में दो जन्म लेती हैं... एक अपने माँ बाप के घर और दूसरा समुद्राल में... परन्तु संध्या का यह जन्म अनोखा था... वह क्या जाने कि उसका दूसरा स्थान समुद्राल नहीं बल्कि ऐसे संसार में होगा जहाँ दर्द और चीख पुकार के अतिरिक्त कुछ नहीं...

सवेरे संध्या की आँख देर से खुली। अभी तक उसकी आँखों में रात भर जागने की थकन थी। सुबह से ही सराय में चहल-पहल आरम्भ हो गई। कहवे की प्यालियाँ बजने लगीं। संध्या अब इस शोर से घबरा न रही थी, उसे लगता था जैसे वह भी उसी वातावरण का भाग है।

उसने अपने बिखरे हुए बालों को सुलझाया और साड़ी का पल्लू कमर के गिर्द लपेट लिया। उसे बाहर जाने से पहले अब अपने आप को संवारने का कोई विचार न आया। उसे लगा जैसे वह सब झूठी प्रदर्शनी अब और नहीं चल सकेगी।

वह बाहर चवूतरे पर आई। प्रसन्नता में कांपते हुए हाथों से माँ ने स्नेहपूर्वक कहवे का एक प्याला संध्या की ओर बढ़ाया। संध्या ने प्याला ले लिया और मामा की ओर देखते हुए बोली—

“आप ? ...”

“सुबह से चार पी चुका हूँ ...”

“तो पांच सही...” संध्या ने वह प्याला उसकी ओर बढ़ा दिया और माँ से एक और प्याला ले लिया। दोनों एक दूसरे को देख कर मुस्कराए और कहवा पीने लगे। हाल में बैठे लोगों को देखते हुए संध्या ने पूछा,—

“यह सब क्या करते हैं ?”

“भूक मारते हैं...” नन्हे पाशा ने अपने शब्दों पर जोर देते हुए कहा, “बम्बई की लम्बी चौड़ी सड़कों पर सवेरे से सांझ तक खोजते हैं...”

“क्या ?” संध्या ने खुले होठों से प्रश्न किया।

“धन्धा...कोई न कोई धन्धा...कोई नौकरी की खोज में और कोई मजदूरी की...किसी की दृष्टि भोले यात्रियों की तलाश में रहती है कि उनकी जेब पर छापा मारें।”

“तो क्या यह चोरी भी करते हैं ?” उसने फिर पूछा।

“यह बम्बई है...इसे चोरी नहीं कहते...यह भी एक धन्धा है...वह देखो सामने छवकन चाचा को...जानती हो क्या करते हैं ?”

“क्या ?” संध्या ने सामने खड़े एक वृद्ध की ओर देखते पूछा।

“अपाहिजों, भिखारियों की टोली का सरदार है...उन्हें हर चौक पर बिठाने की कमीशन लेता है कि पुलिस वाले उन्हें तंग न करें।”

संध्या ने एक लम्बी सांस भरी।

“पगली, यह अनोखी दुनिया है धीरे-धीरे सब समझ जाओगी...आओ तुम्हारा परिचय कराएं...जान डले...” पाशा ने ऊँचे स्वर में पुकारा।

नन्हे पाशा को झुक कर सलाम करते हुए एक व्यक्ति उनके सामने आ खड़ा हुआ—सिर पर फटा पुराना हैट और किसी कबाड़ी से लिया पुराना डिनर सूट पहिने वह इन भिखारियों में एक काला अंग्रेज दिखाई देता था।

“हैलो जान... तुम्हारा ज्योतिष क्या कहता है ?”

“एक तूफान आने वाला है,” जान ने संध्या को ओर देखते हुए कहा।

“कहां ?”

“तुम्हारी सराय में—बहुत बड़ा तूफान...इन्कलाब...”

“कौन लायेगा ?” नन्हे पाशा ने मुस्कराते हुए पूछा।

“यह मैंटम...” उसने संध्या की ओर देखते हुए उत्तर दिया।

उसकी यह बात सुनकर पाशा खिलखिला कर हंसने लगा जैसे उसकी यह बात उसे बड़ी अनोखी लगी हो। जान उसे हंसते देख कर झपककर एक ओर हो गया।

“तुम एक तूफ़ान लाओगी...मेरी सराय में... यह ईसाई का बच्चा अपने आप को ज्योतिषी जता कर बम्बई में आए यात्रियों की जेब से चांदी खींचता है ।” पाशा ने सिर हिला कर मुसकराते हुए संध्या को सम्बोधित करते हुए कहा ।

‘यह भी तो एक धंधा है मामा !’

‘हाँ बेटा...अपने को जीवित रखना भी एक धंधा है ।’

“परन्तु यूँ कीड़ों मकोड़ों की भाँति जीने से तो मर जाना ही अच्छा है,” उसने कुछ गम्भीर स्वर में उत्तर दिया ।

“सुन्दर...पर यह विचार इन कीड़ों-मकोड़ों में मत फैलाना वरना यह अपनी चाल छोड़कर हवा में उड़ने लगेंगे...फिर जानती हो क्या होगा ?”

“क्या होगा ?” उसके स्वर में दृढ़ता थी ।

“धरती पर औंधे आ गिरेंगे क्योंकि इनके भाग्य में रेंगना ही है ।”

“तो मैं इनका भाग्य बदल दूंगी—इन्हें ‘पर’ देकर उड़ना सिखाऊंगी ।”

“तो जान डले ठीक कहता है...यह मैडम इन्कलाब लायेगी ।” यह कहकर वह फिर हँसने लगा । इस हँसी में भयानकता थी ।

संध्या ने कहवे का खाली प्याला चबूतरे पर रख दिया और धीरे-धीरे पाँव उठाती हाल में बैठे लोगों की ओर बढ़ी । खाना बीबी और नन्हे पाशा चुपचाप उसे देखते रहे ।

आगे बढ़कर उसने सबको एक स्थान पर एकत्र होने का संकेत किया और जब वे उसके गिर्द जमघट बनाकर खड़े हो गये, तो ऊँचे स्वर में उनको सम्बोधित कर बोली, “मैं तुम लोगों का भाग्य बदल देना चाहती हूँ ।”

सब आश्चर्य से उसकी ओर देखने लगे जैसे किसी ने विचित्र और अनहोनी बात कह दी हो । वे सब आपस में खुसर-फुसर करने लगे...

‘मौन’ एक समझ में न आने वाली अधूरी रागिनी में बदल गया। वह फिर बोली —

“तुम लोगों को क्या चाहिए ?”

“पेट भर रोटी...” उनमें से एक बोला।

“हां, हां...दो समय रोटी।” सब ने दोहराते हुए कहा।

“तो क्या शरीर ढांकने को कपड़े नहीं चाहियें तुम्हें ?” संध्या ने उसी स्वर में फिर पूछा।

दो एक क्षण चुप रहने के पश्चात् वे फिर इकट्ठे बोले—“क्यों नहीं...हमें नंगे तो नहीं रहना...हम भी इन्सान हैं।”

“तो अपने को पहिचानने का प्रयत्न करो...इन्सानों की भाँति जीना सीखो।”

“परन्तु कैसे ?” एक ने आगे बढ़ते हुए पूछा।

“इन्सानियत के मार्ग पर चलकर...आओ मैं तुम सब को एक नया पथ दिखाती हूँ जहाँ रोटी...कपड़ा मकान सब को एक समान मिलेगा...क्या तुम इस पथ पर मेरा साथ दोगे ?”

“अवश्य”। हाल लोगों की आवाजों से गूँज उठा जैसे सचमुच सब को कोई संभालने वाला मिल गया हो।

गिरौह को चीरते हुए वह आवारा सूरत व्यक्ति, जिसने रात संध्या को रोका था और फिर उपहार में इत्र की शीशी दी थी, आगे बढ़ा और आँखें झपकते हुए बोला—“मैडम...सब कुछ मिलेगा क्या ?”

“क्यों नहीं, साहस और विश्वास से काम लो तो सब कुछ...”

“तो मुझे भी कुछ दो...”

“क्या ?”

“अपना प्यार...”

उसकी यह उदंडता और अशिष्ट उत्तर सुनकर सब उस पर झपटने ही वाले थे कि संध्या ने हाथ के संकेत से उन्हें रोक दिया और बोली—

“हाँ, अवश्य मिलेगा परन्तु एक शर्त पर...”

“क्या ?”

“जब तुम्हारे होश ठिकाने आ जायेंगे ।”

“वह तो तुम ही ला सकती हो मैडम !”

संध्या दो पग आगे बढ़कर उसके पास जा खड़ी हुई । सब आदमी पीछे हटकर खड़े हो गये । संध्या ने दोनों कंधों को पकड़ते हुए झंझोड़कर उसकी आँखों में देखा । वह अभी तक शराब के नशे में था... एक बार फिर उसे झंझोड़कर जोर से एक थप्पड़ उसके गाल पर जमा दिया ।

देखने वालों में से किसी ने कोई शब्द न निकाला । खाना बीबी और नन्हें पाशा भी दूर खड़े चुपचाप यह खेल देखते रहे । संध्या ने क्रोध भरी दृष्टि से उसे फिर देखा और तेज पग उठाती हुई कमरे की ओर मुड़ गई । भीतर जाने से पहले उसने एक बार मुड़कर देखा... आवाज़ सूरत युवक लज्जा से आँखें धरती में गाड़े वहीं खड़ा था... शायद उसे एक ही चोट से होश आ गया था ।

आकाश पर आज कुछ अधिक लालिमा थी—रात भर की जलती हुई बत्तियाँ धीरे-धीरे बुझ रही थीं। बम्बई की मुनसान सड़कों पर लोगों की चहल-पहल आरम्भ हो रही थी—समुद्र के जल से उठी सलोनी धुंध बम्बई की ऊँची ऊँची इमारतों पर हल्की सी लकीर लगाये जा रही थी।

इस धुंध को देखती अपने विचारों में लीन संध्या सड़क किनारे बने फुट-पाथ पर बढ़ती चली जा रही थी—इस लम्बे चौड़े संसार में आज वह अकेली थी। उसके मुख पर चिन्ता और घबराहट के विशेष चिन्ह तो न थे, किन्तु उसकी पलकों से एक उदासी सी भाँक रही थी।

धीरे-धीरे उसकी तेज गति धीमी और उसके मन की धड़कन तेज होती गई। आज वह बहुत दिनों बाद राय साहिब के घर की ओर जा रही थी। अब वह इसे अपना घर कहते हुए भी घबराती थी। राय साहिब और मालकिन का स्नेह अब उसे सपना सा अनुभव होने लगा। बेला का विचार आते ही वह अज्ञात भय से कांप जाती। फिर भी साहस बटोर कर वह आज उसी घर में जा रही थी—उस व्यक्ति की भाँति जो बार-बार निराशा का सामना करके भी भगवान के मन्दिर को नहीं छोड़ता और उसी की शरण लेता है।

फाटक के पास पहुँचकर वह रुक गई। उसने दृष्टि घुमा कर कोठी के बाग को देखा। फूल, पौधे, ब्यारियाँ सब वैसी थीं पर उसे लगा

जैसे सब उससे रूठ गये हों। प्रभात की शीतल वायु के भोकों ने उसकी पलकों में छिपे आँसुओं को स्पष्ट कर दिया।

उसके भारी पाँव कठिनाई से उठ रहे थे। वह सामने से गोल कमरे में जाने के बदले पिछले बरामदे से राय साहिब के कमरे की पिछली खिड़की पर जा ठहरी। खिड़की का एक किवाड़ खुला था। उसने चोर दृष्टि से भीतर भाँका। राय साहिब मेज पर बैठे कुछ लिख रहे थे। पहले तो उसने चाहा कि द्वार खटखटाये पर फिर इसे उचित न जानकर उलटे पाँव गोल कमरे की ओर लौटी और भीतर आ गई।

वहाँ कोई न था। वह दबे पाँव राय साहिब के कमरे तक जा पहुँची और उनकी कुर्सी के पीछे खड़े होकर उनके देखने की प्रतीक्षा करने लगी।

किसी को अपने पीछे खड़ा अनुभव कर जैसे ही राय साहिब ने घूमकर देखा आश्चर्य और प्रसन्नता से वह उछल पड़े। संध्या ने देखा उनकी आँखों में आँसू भलक रहे थे। उन्होंने कांपते हाथ से कलम मेज पर रख दिया और बढ़कर संध्या को अपने सीने से लगा लिया।

“पापा... यह आँसू कैसे ?” संध्या ने संभलते हुए कहा।

“नहीं तो...” उन्होंने आँसू पोछते हुए कहा, “जानती हो मैं तुम्हारा ही नाम लिख रहा था।”

“किस पर ?”

उन्होंने कांपते हाथों से मेज पर से लिफाफा उठाया और उसकी ओर बढ़ा दिया।

“यह क्या है ?”

“ब्याह पर आने का न्योता... इस पहली को तुम्हारी बेला का ब्याह है।”

“ब्याह...” उसके कांपते होठों से धीरे से निकला और धड़कते दिल से उसने लिफाफा खोला।

निमंत्रण-पत्र पढ़ते ही उसकी आँखों में आँसू भर आए पर अधिकार से काम लेते हुए वह उन्हें पी गई और मुसकरा कर बोली, “पापा... बघाई हो...में अवश्य आऊंगी...आपकी बेला के ब्याह पर।”

“पगली...तुम्हारी भी तो छोटी बहिन है।”

“हाँ, हाँ पापा मैं कभी उसके अधिकार भूल सकती हूँ,” उसने पापा को सांत्वना देते कहा।

“जब तुम्हारा नाम लिखने लगा तो आँखों में आँसू छलक आये।”

“वह क्यों पापा ?” वह राय साहिब के समीप कुर्सी पर बैठते बोली।

“भाग्य का चक्कर देखकर...कहाँ की ज्योति और कहाँ जाकर जली।”

“भाग्य ठीक ही करता है पापा...हम इन्सान कभी गलत मार्ग पर चलने भी लगे तो वह अपना लम्बा हाथ बढ़ाकर हमें ठीक मार्ग पर डाल देता है।”

“मन बहलावे के लिए यह विचार अच्छे हैं” राय साहिब कहते हुये उठे और बोले, “नाश्ता कर लें...तुम्हारी माँ प्रतीक्षा कर रही होगी।”

“परन्तु पापा...” वह कहते-कहते रुक गई।

“हाँ बेटी, कहो, क्या कोई बात है ?”

“हाँ पापा...एक काम से आई थी।”

“क्या काम ?” वह दोबारा बैठते बोले।

“मुझे कुछ रुपयों की आवश्यकता है” वह धीमे स्वर में आँखें भुकाते बोली।

“बस। कहो कितने चाहियें ?” उन्होंने डार से बटुआ निकालते हुए पूछा।

“इन से काम नहीं चलेगा।”

“तो तुम्हें अधिक चाहियें ?”—आश्चर्य से उन्होंने पूछा।

“हाँ पापा, दस हजार...ऋण ले रही हूँ · प्रण करती हूँ शीघ्र लौटा दूँगी....”

दस हजार का नाम सुनते ही पल भर के लिये राय साहिब सोच में पड़ गये और फिर सम्भलते हुए बोले—

“दस हजार...इतने का क्या करोगी ?”

“जरूरत है...आप मुझ पर विश्वास रखिये मैं इन्हें किसी व्यापार के लिए ले रही हूँ ।”

“ऐसी तो कोई बात नहीं...और फिर ऋण कैसा.....कोई बेटियों को भी ऋण देता है.. मैं तो स्वयं अपनी बेटी का ऋणी हूँ...इतना तो मैं तुम्हारे दहेज में ही दे डालता ।” उन्होंने द्वार से अपनी चैक-बुक निकाली और संध्या के नाम दस हजार का चैक काट दिया ।

चैक को सावधानी से लपेटते हुए संध्या ने अपने पर्स में रख लिया और भीगी आँखों से मुस्कराते हुए राय साहिब का धन्यवाद करने लगी । राय साहिब की आँखों में भी प्रसन्नता के आँसू छलक आये । क्षण भर चुप रहकर स्नेह से उसकी ओर देखते हुए वह बोले, “संध्या ।”

“जी....”

“बेला और रेनु मेरी दो आँखें हैं परन्तु उनकी ज्योति तुम हो....” यह कहते हुए उन्होंने उसे फिर अपनी छाती से लगा लिया और बोले, “हाँ इस पैसे के विषय में किसी से कुछ मत कहना और किसी व्यापार की सोचो तो मुझ से पूछ लेना ।”

“आप से पूछे बिना कोई काम न करूँगी ।”

इतने में मालकिन भी वहाँ आ पहुँची और संध्या को देखकर अति प्रसन्न हुई । दोनों संध्या को साथ लेकर नाश्ते के लिये खाने के कमरे में आ बैठे । राय साहिब ने बेला को भी बुलवा भेजा परन्तु वह नीचे न आई । शायद लज्जा से वह संध्या के सम्मुख आने से घबराती थी । रेनु स्कूल जा चुकी थी ।

मालकिन को जब पता चला कि संध्या सदा के लिए नहीं बल्कि थोड़े

समय के लिए उनसे मिलने आई है तो वह उदास हो गईं...परन्तु अब वह अपने बीच एक ऐसी दीवार सी पातीं जैसे संध्या उनसे बिछड़ गई हो और उसे अपने पास रखने का वह अधिकार न रखतीं हों ।

आनंद और बेला के ब्याह की कथा छेड़ कर वह उसके घाव ताज़ा न करना चाहते थे इसलिए उन्होंने इस विषय पर कोई बात न की ।

राय साहिब और मालकिन अभी चाय ही पी रहे थे कि संध्या उठी और सीढ़ियों की ओर बढ़ी ।

“कहाँ ?” राय साहिब ने मुँह से प्याला हटाते हुए पूछा ।

“बेला से मिलने,” उसने मुस्कराते हुए उत्तर दिया और तेज़-तेज़ पांव उठाती ऊपर चली गई ।

कमरे का द्वार खोलकर क्षण भर के लिए वह पायदान पर रुक गई और दीवारों को देखने लगी...यहीं वह रहती थी...वहाँ का कुछ भी न बदला था हर चीज़ अपने स्थान पर ज्यों की त्यों थी...बदले थे तो केवल उसमें बसने वालों के मन जो एक ही दिशा में चलते-चलते अचानक पृथक हो गये थे ।

खाली कमरे में घूमती हुई उसकी दृष्टि बाथ रूम के किवाड़ पर रुक गई । बेला अभी-अभी भीतर से निकली थी । दोनों कुछ समय तक चुपचाप एक दूसरे को देखती रहीं । दोनों के मन में एक तूफान मोज़े मार रहा था । आखिर संध्या ने मुस्करा कर धीमे स्वर में मौन को तोड़ते पूछा—

“क्या अभी सोकर उठी हो ?”

“हूँ...” उसने असावधानी से सिर हिलाते हुए उत्तर दिया ।

“नीचे आते डर लगता था क्या ?”

“डर ? किस से ?”

“शायद सोचती हो दीदी कहीं खा ही न जाये ।”

“तो इसमें झूठ ही क्या है ‘‘तुम्हारा अधिकार जो चुराया है ।”

“ऐसा न कहो बेला...तुमने चुराया नहीं...मैंने उपहार में दिया है ।”

“सच ! दीदी !” बेला ने बनते हुए कहा और संध्या के कुछ और निकट आ गई। संध्या ने पहले तो चाहा कि उसे गले से लगा ले पर किसी आन्तरिक भवना से रुक गई—“उसे लगा जैसे बेला अब पराई हो चुकी है। बेला के गाल पर चुटकी लेते वह बोली—“देखना...ब्याह पर हमें बुलाना मत भूलना।”

बेला ने लज्जा से आँखें भुका लीं। संध्या का यह वाक्य उसके दिल पर नश्वर का सा धाव कर गया। उसने देखा संध्या कमरे को निहार रही थी।

“वह कैसे है बेला ?”

“कौन दीदी ?” आश्चर्य से बेला ने पूछा।

“तुम्हारे आनंद बाबू ...” संध्या के स्वर में दृढ़ता थी।

आनंद का नाम संध्या की जुबान से सुनते ही बेला को मानो किसी ने मनो बरफ में रख दिया हो। क्षण भर के लिये वह किसी सोच में खो गई और फिर माथे पर बल लाकर बोली—

“अच्छे है तुम्हें पूछते थे...”

“क्या ?” उसने उत्साह पूर्वक पूछा।

“यही कि गंदी गलियों से लौटी नहीं अभी ?”

“ओह...तो इतना विचार है उन्हें मेरा...अच्छा बेला अब वह आयें तो इतना कह देना उन्हें...”

“क्या ?”

“मैं तो कभी उन गलियों से न लौटूंगी परन्तु एक दिन वह अवश्य उन गलियों में आ जायेंगे।”

संध्या यह कहकर सीढ़ियाँ उतर गई। बेला ने उसे जाते हुए देखा और घृणा से नाक सिकोड़ ली...उसके शब्द उसके मस्तिष्क में गूँज रहे थे...क्या आनंद की याद अभी तक उसके मन में चुटकियाँ ले रही है... वह क्रोध से दाँत पीसते हुए स्वयं ही कहने लगी, “इसे भी जड़ से बाहर निकालना होगा।”

जब नन्हे पाशा को पता चला कि संध्या राय साहिब से दस हजार का चैक लाई है और यह रुपया वह गरीबों को सुधारने पर लगाना चाहती है तो वह ठहाका मार कर हँसने लगा मानो किसी ने अनहोनी बात कर दी हो...जैसे किसी ने कह दिया हो कि वह आकाश से चाँद-तारे तोड़ कर धरती पर ले आयेगा। उसकी यह हँसी संध्या को अच्छी न लगी और वह बोली —

“मामा यह कैसा उपहास है ?”

“उपहास ?” हँसी रोकते हुए उसने यह शब्द दोहराया, “उपहास तो तुम कर रही हो... एक बहुत बड़ा उपहास... हम गरीबों के भाग्य से... तुम क्या समझती हो इस थोड़े पैसों से तुम हमारा भाग्य बदल दोगी ?... यह असम्भव है।”

“तो क्या इतना रुपया थोड़ा है ?”

“वैसे देखें तो बहुत अधिक, जो शायद यह भिखारी इकट्ठा देखकर प्राण ही तोड़ दें परन्तु वास्तव में कुछ भी नहीं... चंद सिक्के व्यय करके इन लोगों को जगाया अवश्य जा सकता है है... इनकी जीर्ण दशा को खाने और वस्त्रों से ढका जा सकता है, किन्तु इनके जाग उठने के बाद जानती हो क्या होगा ?”

“क्या ?”

“यह लोग जीवन के लम्बे सांस लेने लगेंगे... खुले वातावरण में आने से यह संसार का विस्तार नापने की इच्छा करेंगे... और इच्छा और कामना के सागर में डूबने लगेंगे... फिर जानती हो यह लोग अपना नाम मात्र का सुख चैन भी खो बैठेंगे... रुपये के प्रति उनका मोह बढ़ता जायेगा... रुपया, रुपया, रुपया... जिससे यह अपनी जागृत इच्छाओं की पूर्ति कर सकें।”

“आप ठीक कहते हैं... किन्तु आपके और मेरे सोचने में बड़ा अन्तर है।”

“वह कैसे ?”

“मैं इनका शरीर नहीं बल्कि उनकी आत्मा जगाने वाली हूँ।”

नन्हे पाशा मुस्करा कर चुप हो गया। संध्या के दृढ़ निश्चय से उसे विश्वास था कि वह अवश्य उन लोगों के जीवन में कोई परिवर्तन लाना चाहती है, किन्तु वह स्वयं उसके विचारों के सामने झुकना न चाहता था।

सब सराय वासियों को एक स्थान पर एकत्र करके संध्या ने अपना कार्य आरम्भ कर दिया। उसने ऐसे आदमी अलग कर लिए जो निश्चय के दृढ़ और काम करने योग्य थे। वृद्ध और बीमार व्यक्तियों को उसने सराय में ही रहने दिया।

नन्हे पाशा सबको संध्या के सकेत पर चलते देखकर मुस्करा रहा था। यह संध्या की ही दृढ़ता थी कि उसने अपनी बातों से सबको एक कर दिया। उसके स्थान पर कोई और व्यक्ति होता तो वह कभी इकट्ठे न होते।

संध्या ने देखा कि उस जमघटे से दूर द्वार के समीप वाले स्तम्भ का सहारा लिये वह आवारा युवक अकेला बैठा ताश के पत्तों से खेल रहा है। संध्या कुछ सोचकर धीरे-धीरे चलती उसके सामने आ खड़ी हुई।

“यह क्या हो रहा है...मिस्टर?”

“ओह ! आप !” उसने आँखें ऊपर उठाकर संध्या को देखा जिसके मुख पर आज क्रोध और गम्भीरता के बदले सहानुभूति और प्यार झलक रहा था।

“क्या अकेले भी ताश खेली जाती है ?” उसने नम्रता से पूछा।

“कभी-कभी...जब मन और मस्तिष्क अलग-अलग हो जाते हैं।”

“बड़ा दार्शनिक विचार है...आखिर क्या उद्देश्य है तुम्हारा ?”

“कैसा उद्देश्य .”

“अपने जीवन का...कहाँ से आये...कहाँ जाओगे...कौन सी मंजिल...?”

संध्या के इस प्रश्न पर वह खिलखिलाकर हँसने लगा—“संध्या ने अनुभव किया कि इस दार्शनिक के मस्तिष्क के पेच कुछ ढीले हैं” आज संध्या को उस पर तरस आ रहा था—आखिर वह अपने जीवन को क्यों व्यर्थ गँवा रहा है—

सराय के लोगों और अपने मामा से उसने सुन रखा था कि वह किसी ऊँचे अमीर घराने का लड़का है जिसे आवारा होने के कारण घर से निकाल दिया गया था और अब शराब को जीवन साथी बनाये हर स्थान की खाक छानता फिरता था—संध्या उसे और समीप से जानने के लिए व्याकुल हो उठी—उसके लिए उसके मन में सहानुभूति बढ़ती जा रही थी। संध्या उसके पास ही भूमि पर बैठ गई और बोली—“आओ—खेलें—”

“क्या ?”

“ताश—” संध्या ने मुस्कराते हुए कहा।

“ओह—तो क्या खेलोगी—?”

“रमी—या रंग।”

“तो रमी सही—” युवक ने पत्ते बाँटने आरम्भ कर दिए।

धीरे-धीरे सब आदमी वहीं आ खड़े हुए और उनका खेल देखने लगे।

उसी समय आनन्द ने सराय में प्रवेश किया और चुपचाप उसी जमघटे के पास आ रुका। जब उसने संध्या को इन गन्दे लोगों के साथ बैठे ताश खेलते देखा तो क्रोध से तमतमा उठा। भीड़ से निकलता हुआ वह बिल्कुल संध्या के सामने जा खड़ा हुआ। जब बड़ी देर तक संध्या ने ऊपर न देखा तो वह जोर से बोला—“संध्या।”

संध्या किसी को अपना नाम पुकारते सुन कर चौंक उठी, जैसे किसी ने उसके शरीर से बिजली का तार छुआ दिया हो। दृष्टि ऊपर उठा कर उसने जमघटे में खड़े आनन्द को देखा और स्थिर रह गई। आनन्द ने अंग्रेजी भाषा में कहा कि वह अलग उससे कुछ कहना चाहता है।

“क्या ? आप कह सकते हैं....” उसने असावधानी से उत्तर दिया ।

“परन्तु, इनके सामने ?”

“यहाँ सब अपने ही हैं...कोई पराया नहीं . कहिए....” उसने एक पत्ता फेंकते हुए कहा ।

“बड़ी विचित्र बात है ..इन सबके सामने मुझे अपमानित करना चाहती हो...अपनी प्रतिष्ठा का कुछ तो विचार किया होता ।”

“मेरी प्रतिष्ठा तो गई .. अब मैं इन्हीं का एक अंग हूँ....जो कुछ आप कहना चाहें कह सकते हैं ।”

“मुझे कुछ नहीं कहना तुमसे...आखिर तुम वही निकली जो वास्तव में थीं ।” उसने जेब से एक लिफाफा निकाल कर उसके आगे फेंका और लम्बे डग मारता हुआ बाहर निकल गया । आसपास खड़े आदमी एक ओर हट गये । संध्या के हाथ से ताश के पत्ते छूट कर धरती पर आ रहे । उसने लिफाफा खोल कर पढ़ा तो उसकी आँखों में आँसू ढलक आये...यह आनन्द की ओर से ब्याह का निमन्त्रण पत्र था ।

संध्या को उदास और चुप देख कर किसी ने कोई प्रश्न न किया और वहाँ से हट कर अपने-अपने स्थान पर चले आए और वह स्वयं किसी विचार में खोई धीरे-धीरे पाँव उठाती चबूतरे की ओर चली गई । आवारा युवक भी उससे कुछ पूछने का साहस न कर सका ।

दोपहर तक सराय का हाल बिल्कुल खाली हो गया । सब लोग अपने-अपने धन्धों पर चले गये । उनका सामान रेलवे वेटिंग रूप के यात्रियों की भांति चारों ओर इधर-उधर रखा हुआ था । संध्या गली में खुलने वाले झरोखे में बैठी कभी बिखरे हुए सामान को और कभी गली में खेलते गन्दे बच्चों को देख रही थी । वह इन्हीं बातों में आनन्द के विचार को दूर करना चाहती थी । वह अपने मन को कुचले बिना उन कठिनाइयों का सामना करना चाहती थी जो उसके दिल पर नित नए वार करती थीं ।

पीछे से आते हुए किसी के पाँव की आहट सुनाई दी। सामने दीवार पर आने वाली छाया देख कर वह समझ गई कि यह वही आवारा दार्शनिक है। पीछे मुड़ कर न देखते हुए ही दबे स्वर में उसने पूछा—
“तुम नहीं गये...कहीं?”

“नहीं...जाऊँ भी तो कहाँ?”

“क्यों...?” संध्या ने मुँह फेरते हुए पूछा—“कहीं तो जाते ही होगे?”

कहीं भी नहीं...एकांत ही भली लगती है।”

“ओह! ज्ञात होता है तुम बहुत सताये हुए हो।”

“आप ठीक समझीं...आप ही की भाँति।”

“मेरी...भाँति? वह कैसे...? तुम से कितने कहा कि मैं सताई हुई हूँ।”

“आप लाख छिपायें परन्तु मन की अवस्था छिपाये नहीं छिपती। इस समय भी आप एकांत में मन की कसक को शान्त करने का प्रयत्न कर रही हैं।”

संध्या ने इसका कोई उत्तर न दिया। उसने अनुभव किया कि वह युवक उसके मन की थाह लेता हुआ उसके निकट आना चाहता है। वह अपने हृदय की गहराइयों में झाँकने का किसी को स्थान न देना चाहती थी। चन्द क्षण मौन के पश्चात जब उसने देखा कि वह कोई नया प्रश्न करने का प्रयत्न कर रहा है तो वह स्वयं बात का पहलू बदलते बोली—“तुम्हारा नाम!”

“सुन्दर...” उसने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

“सुन्दर...बहुत सुन्दर...तुम इस सराय में कैसे आये?”

“भाग्य खींच लाया,” वह संध्या के पास बैठते बोला।

“इसमें भाग्य का क्या दोष...तुम आये तो अपनी ही इच्छा से।”

“ठीक है...मन, मस्तिक और पाँव सब स्वयं ही लाते हैं परन्तु इनके पीछे भाग्य की एक अज्ञात शक्ति इन्सान को उस ओर खींचती है।”

संध्या ने उसकी बातों से अनुमान लगाया कि वह युवक केवल आवारा और शराबी नहीं बल्कि असाधारण दिमाग का मालिक है जो किसी मानसिक उलझाव के कारण जीवन को नष्ट किये जा रहा है। उसे उसकी बातों से यह भी पता चला कि वह बी० ए० पास है और एक ऊँचे अमीर घराने का एकलौता दीपक है जो किसी भगड़े और हठ के कारण घर-बार छोड़ आया है और उसने वापस न लौटने की सौगंध खा रखी है। उसकी बातों से स्पष्ट था कि वह छल और कपट से घृणा करता है और सच बोलता है।

“तुम्हें एक सहारे की आवश्यकता है,” संध्या ने गम्भीर स्वर में उस से कहा।

“हो सकता है...पर वह सहारा है कहाँ...वह शान्ति किसके पास है जिसकी मुझे खोज है।”

“शराब की बोतल में।”

“यह आप कह रही हैं?” सुन्दर फीकी हँसी हँसते बोला।

“हाँ, मैं कह रही हूँ और ठीक कह रही हूँ...जब तुम्हारी रगों में लहू के स्थान पर इस तेजाब का संचालन होने लगेगा और तुम्हारा हृदय जल कर काला पत्थर बन जायेगा तब तुम्हें वैन और सुख मिल जायेगा... तुम मृत्यु में सुख खोजते हो...”

मृत्यु का शब्द सुनते ही सुन्दर काँप सा गया जैसे संध्या ने उसे स्वप्न से जगा कर कठोर वास्तविकता का दृश्य दिखा दिया हो। वह आश्चर्य में खड़ा निरुत्तर-सा उसे देखने लगा।

“डर क्यों गये? मृत्यु इतनी भयानक लगती है तो जीवन से प्यार करो...जीवन के उतार-चढ़ाव में आनन्द अनुभव करो—मेरी भाँति... मैं स्त्री होते हुए भी ज़माने से टक्कर ले रही हूँ और तुम पुरुष होकर घबरा गये...याद रखो सच्चा प्यार वह है जिसमें त्याग हो...जीवन वह है जो अपने लिए नहीं दूसरों के लिए व्यतीत किया जाये।”

सुन्दर ने आज जीवन में पहली बार ऐसी बातें सुनी थीं। अभी तक

वह किसी दृढ़ निश्चय से अपरिचित था। उसने अपने में नई आशा का संचार पाया। दोनों मौन एक दूसरे को देखते रहे...दोनों एक दूसरे के दर्द को भाँप गये थे। सुन्दर ने होठों को दबा कर दृढ़ स्वर में कहा—

“मैं प्रयत्न करूँगा कि किसी के काम आ सकूँ...परन्तु फिर भी कभी लड़खड़ाने लूँ तो...”

“तो मैं तुम्हें सँभाल लूँगी...”

वह चला गया...सराय के बाहर...बिना कुछ कहे सुने...संध्या ने पूछा भी पर उसने कोई उत्तर न दिया...संध्या कुछ घबराई कि शायद उसकी बातों का बुरा मान कर सदा के लिए सराय को छोड़ गया हो... या मन के तूफान को शान्त करने किसी एकांत स्थान पर चला गया हो।

शाम हो गई। अँधेरे ने पाँव पसारने आरम्भ कर दिये और सराय वासी एक एक करके धन्धों से लौट कर आने लगे...कहवे का दौर चलने लगा और संध्या की माँ को बात करने का भी अवकाश न था। संध्या अभी तक चबूतरे पर खुलती हुई खिड़की से आने-जाने वालों को देख रही थी। भीतर आने वाला हर व्यक्ति उसे आदर पूर्वक नमस्कार करता।

उसकी दृष्टि बार-बार उठकर बाहर की देहली पर रुक जाती... सुन्दर अभी तक न आया था...शायद वह कभी न लौटेगा...शायद उसका सुख और चैन शराब में ही हो जिसे वह इस सराय में अब न पी सकता था...कई प्रकार के विचार उसके मन में उठ रहे थे...पर वह आये या न आये उसे क्या...यह सोचकर उसने आने मन को बहलाने का प्रयत्न किया पर बहला न सकी...क्योंकि इसमें उसकी हार थी...पहली हार... यदि वह एक समझदार और पढ़े लिखे युवक को ठीक मार्ग पर न ला सकी तो इन गँवार लोगों को संवारने का बीड़ा कैसे उठा सकती है।

रात अधिक हो गई और सब अपने-अपने स्थान पर नींद में खो गये...संध्या की दृष्टि अभी तक सराय के बाहर वाले द्वार पर लगी थी।

नन्हे पाशा सोने के लिए कहकर भीतर चले गये परन्तु संध्या ने सुनी अनसुनी कर दी। जब मां काम से निबट कर आई तो संध्या बोली—
“मां सुन्दर अभी तक नहीं आया।”

“सुन्दर तो क्या तू उस आवारा छोकरे के विषय में सोच रही है... पगली ! आ जाएगा... नशे में लड़खड़ाता आता ही होगा... उसे क्या होश कि रात कितनी बीती है।”

“अच्छा मां तुम चलो... मैं अभी आती हूँ।”

“क्या करेगी यहाँ अकेली...?”

“अभी नींद नहीं आई।”

सराय के बाहर घोड़ा गाड़ी रुकने की आवाज आई। मां कह उठी, “लो मतवाला राजा आ गया... घोड़ा गाड़ी उसी की लगती है।”

संध्या द्वार की ओर देखने लगी जहाँ से उसे प्रवेश करना था। वह सोच बैठी थी कि यदि आज भी वह नशे में चूर लड़खड़ाता हुआ आया तो वह उसे सराय से बाहर निकाल देगी। पास ही रखी छड़ी उसने उठा ली और क्रोध में दाँत पीसने लगी।

सुन्दर ने भीतर प्रवेश किया। आज उसके पाँव लड़खड़ा नहीं रहे थे बल्कि सोये हुए साथियों के बीच से धीरे-धीरे संध्या की ओर बढ़ रहे थे। आज वह बहकता नहीं आ रहा था। स्पष्ट था कि आज उसने पी नहीं।

उसे पूर्ण होश में देखकर माँबेटी आश्चर्य से देखती रह गई। पास आकर वह उन्हें अपनी ओर देखते बोला—

“क्यों... आज आप लोगों को क्या हुआ है?”

“कुछ भी तो नहीं... परन्तु आज...”

“आज मैं होश में क्यों हूँ, यही पूछना चाहती हूँ न... तो सुनो, आज मेने पी नहीं...”

“सच !” संध्या के होठों से निकला ।

“हां...क्योंकि आज मुझ पर कोई और ही नशा सवार था ...”

“कैसा नशा ?”

“तुम्हारी बातों का नशा ...तुम गरीबों के अंधेरे संसार में उजाला लाना चाहती हो न ?”

“हां, तो...?”

“मैं आज उसका प्रबन्ध करके आया हूँ,” यह कहते हुए उसने जेब से नोटों का एक बण्डल निकाला और उसके सामने रख दिया । मां बटी दोनों कभी नोटों और कभी सुन्दर की ओर देखने लगीं ।

“पूरे पाँच हजार हैं”, सुन्दर बोला, “मां ने कहा है कि काम आरंभ होने के पश्चात और दूँगी ।”

“ओह ! तो घरवालों से बन गई है ।”

“मां से...पिताजी से नहीं ।”

नन्हे पाशा पहले तो इतना रुपया रखने के पक्ष में न थे । परन्तु संध्या और खाना के कहने पर उसने नोटों का बंडल लेकर चारपाई के नीचे दबे लोहे के सन्दूक में सुरक्षित रख दिया ।

संध्या और सुन्दर दोनों रुपयों को रखवा कर बाहर निकल आये । दोनों आँखों में ही एक दूसरे का धन्यवाद कर रहे थे । दोनों के मुख पर प्रसन्नता थी । सुन्दर ने कहा—

“आशा है हम अब अपनी समस्याओं को सरलता से सुलझा सकेंगे ।”

“आशा तो है परन्तु पैसे के साथ-साथ इन्सान का निश्चय भी बढ़ होना चाहिए और इस कार्य मे मुझे तुम्हारी सहायता की आवश्यकता है ।”

“मैं अपनी ओर से भरसक प्रयत्न करूँगा कि शीघ्र हम अपने उद्देश्य में सफल हो जायें।”

“मुझे तुमसे यही आशा है।”

भीतर से मां की आवाज आई और संध्या भीतर चली गई।

सुन्दर आज बहुत प्रसन्न था। आज उमने शराब नहीं पी थी फिर भी वह किसी अज्ञात नशे में डूबा हुआ सा था। घोर अँधेरे में हाथ पाँव मारते हुए आशा की एक किरण ने उसे मंजिल का मार्ग दिखा दिया था।

राय साहिब के घर आज ब्याह की तैयारियाँ हो रही थी। घर का हर व्यक्ति किसी न किसी कार्य में व्यस्त था...नातेदारों की भीड़... बेला की सहेलियों का जमघट... मालकिन को तो आज सिर खुजाने का भी अवकाश न था।

बारात आने में तीन घण्टे बाकी थे। राय साहिब बाहर लॉन में शामियाने लगवा रहे थे। उन्हें संध्या की प्रतीक्षा थी... भीतर से हर आने वाले व्यक्ति से वह थोड़े समय पश्चात उसके विषय में पूछ लेते... बार-बार उनकी दृष्टि बाहर फाटक पर जाती... क्या उसका मन इतना बदल गया है कि वह बहिन के विवाह पर भी न आयेगी... यदि वह न आई तो लोग क्या सोचेंगे... उसकी सहेलियाँ प्रश्न करेंगी तो वह क्या उत्तर देंगे... इसी चिन्ता में वह खोये हुए थे कि फाटक पर एक गाड़ी आकर रुकी।

निशा की गाड़ी में से संध्या बाहर निकली और सामने राय साहिब को देख उनकी ओर बढ़ी। राय साहिब ने अनुभव किया जैसे उनके पाँव किसी ने कीलों से धरती में गाड़ दिये हों। वह एक अज्ञात भय से काँपने लगे।

“पापा ! मैं आ गई...”

संध्या ने बारीक स्वर में भोलेपन से कहा। इस स्वर में वही मिठास थी जो आज से वर्षों पहले राय साहिब उसके मुँह से सुना करते

थे । उनके चिन्तित मुख पर अब प्रसन्नता की मुसकान थी । संध्या को गले लगाते हुए वह बोले—“मैं तो डर रहा था ।”

“क्यों पापा ?”

“सोचता था...शायद तुम न आओ...”

“यह कैसे हो सकता है...इस घर की प्रसन्नता तो मेरी प्रसन्नता है ।”

स्नेह से पीठ थपथपाते हुए राय साहिब ने उसे भीतर जाने को कहा और स्वयं दालान में आकर नौकरों को समझाने लगे । उन्हें उसके आन्तरिक दुख का पूरा आभास था परन्तु उसे व्यक्त न करना चाहते थे ।

हर ओर चहल-पहल थी...लॉन में खुला शामियाना...तीन-चार सौ आदमियों के खाने-पीने का प्रबन्ध...गेट पर विजली के कुमकुमों से लिखा ‘स्वागतम्’...सड़क पर भँड़ियाँ और फानूस...बैड वालों की धुनें...कितना सुहावना दृश्य था जो इन्सान जीवन में हजार बार देखता है, परन्तु उसके अपने जीवन में वह अवसर एक ही बार आता है...केवल एक बार ।

ऐसा ही नकशा राय साहिब और मालकिन अपने घर के पहले ब्याह का खींचा करते थे । संध्या के मन में इस दृश्य की कल्पना से सदा एक गुदगुदी-सी होती...आज भी यह दृश्य देखकर उसके उदास मन में हल्की-सी गुदगुदी उठी, परन्तु दूसरे क्षण ही किसी भय ने उस पर अपनी छाया डाल दी...जीवन के इस नाटक में हर अभिनेता, हर दृश्य पूर्ण था परन्तु उसका अभिनय आज भाग्य ने बेला को दे दिया था...जब आनन्द उसे ब्याहने आयेगा तो उसके मन पर क्या बीतेगी...क्या उसने पल भर के लिए भी कभी यह अनुभव न किया होगा कि उसकी डग-मगाती नाव के लिए भावना के उमड़ते तूफान में वही एक किनारा है । यह सोचकर उसकी आँखों में आँसू छलक आये ।

अन्दर से ढोलक और गीतों की आवाज़ आई। वह उस भीड़ में सम्मिलित होने से डर रही थी। मन की जलन कम करने के लिए वह बाहर ही से पिछवाड़े की ओर हो ली।

एकान्त में दीवार से लग कर उसने दालान में बने मंडप को देखा जो ब्याह के लिए सजा हुआ था। उसे लगा जैसे वह स्वयं चौकी पर दुल्हन बनी बैठी है, पण्डित अग्नि में घी की आहुति देते हुए मंत्र पढ़ रहा है और पास आनन्द बैठा उसे देख रहा है 'वह लजाई और सिमटी-सी नीचे रखे तेल के कटोरे में देखने लगी जिसमें आनन्द का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था—कितनी घबराहट थी उसके चेहरे पर'... 'एक-एक किसी ने कटोरे में कुछ डाल दिया'... 'भिलमिलाता हुआ आनन्द का प्रतिबिम्ब गुम हो गया और उसका स्थान बेला ने ले लिया'... 'संध्या के विचारों का ताँता टूट गया'... 'मंडप के पास खड़ी रेनु चिल्लाई—'दीदी' और साथ ही उसकी बाँहों में आकर लिपट गई और उसे खींचते हुए साथ ले गई।

जैसे ही उसने ऊपर जाने वाली सीढ़ियों पर पाँव रखा कमरे से कुछ सहेलियाँ खिलखिलाती हुई उसके स्वागत को लपकीं। संध्या आज अपने सबसे सुन्दर वस्त्रों में थी... यह साड़ी उसने बड़े चाव से अपने ब्याह के लिए ली थी। बनी संवरी आज भी वह दुल्हन से कम न लग रही थी।

कमरे में प्रवेश करते ही उसने बेला को देखा जो संकोच और लज्जा से सिमटी हुई सहेलियों के झुण्ड में घिरी बैठी थी। संध्या को देखते ही क्षण भर के लिए बेला का रंग सफेद पड़ गया... उसे लगा जैसे उसने बलपूर्वक संध्या की कामनाओं का लहू करके अपने मेंहदी रचाई हो।

"कहो बेला, कैसा लग रहा है?" संध्या ने उसके निकट स्थान बनाते पूछा।

"क्या दीदी?" बड़ी कठिनाई से वह कह पाई।

"यह ब्याह... दुल्हन बनना... यह शृङ्गार...?"

“कुछ भी तो नहीं...मुझे तो कुछ नहीं लग रहा...सब वैसे ही हैं... कोई विचित्र बात नहीं...”

“नहीं बेला...यह तुम्हारा मन नहीं कह रहा जुबान कह रही है... सोचो तो कितनी बदल गई हो एक ही दिन में तुम ।”

“मैं !” वह फीकी हंसी हंसते बोली, “दीदी ! तुम्हारी दृष्टि बदल गई है ।”

“तो कहाँ गई तुम्हारी चंचलता... अब आँखों में यह संकोच और लज्जा क्यों ?” संध्या ने कोमल भाव से धीमे स्वर में कहा और पास रखा दर्पण उसके सामने रखते बोली, “देख तो जिन नयनों की पुतलियों में सदा चैन और निद्रा रहती थी अब वहाँ प्रतीक्षा की व्याकुलता का वास है ।”

“किसकी प्रतीक्षा, दीदी ?” सामने खड़ी रेनु ने ऊँचे स्वर में पूछा । इस पर सब मिलकर खिलखिला कर हँस पड़ीं । बेला भी हँसी रोक न सकी ।

बेला को संध्या की हर बात यूँ लगती जैसे वह उसे अपने मन की दशा बता रही हो । उसके हृदय से उठा हुआ हर निश्वास बेला के मस्तिष्क के तारों को छेड़ जाता ।

साँझ की घड़ियों ने जैसे ही रात के अंधेरे से मिलन किया कि बेला की कामनाओं की बरात आ पहुँची...चारों ओर सुन्दर वस्त्रों में सुसज्जित लोग कोठी से बाहर बरात का स्वागत का प्रबन्ध करने लगे ।

बाजे की भंकार पर सहेलियों ने बेला को खींच कर बाहर वाले बरामदे में ले जाना चाहा, परन्तु उसने उनके संग जाने से इन्कार कर दिया । बारात को देखने के लिए सब लड़कियाँ बेला और संध्या को अकेले छोड़ कर बाहर भाग गईं । भीतर दोनों बैठी बाजे की धुन सुन रही थीं...दोनों के मन में एक ही कसक थी...परन्तु कितना अंतर था दोनों के आंतरिक अनुभव का...एक के मन की धड़कन में भय के साथ उल्लास की तरंगें भी थीं और दूसरे के मन में धड़कन घटनाओं के उमड़ते हुए तूफानों में दबी थी ।

“दुल्हा को देखने चलोगी ?” मौन तोड़ते हुए संध्या ने बेला से कहा ।

“ऊँ है...क्या लेना है मुझे देख कर...” उसने असावधानी से उत्तर दिया ।

“पगली...ऐसा नहीं कहते...चल मेरे साथ...”

“दीदी ! नहीं...ऐसा भी क्या...भला मेने कभी देखा नहीं उन्हें ।”

“हाँ देखा है अवश्य...पर प्यार की दृष्टि से...दुल्हन बन कर कभी नहीं...चल आज चल कर उस दृष्टि से उनकी छवि देख...”

बेला के हठ को संध्या ने तोड़ ही दिया और सहारा देकर उसे बाहर बालकनी तक ले गई ।

“मुझ से अधिक चाह उन्हें देखने की तो तुम्हें है,” बेला ने साड़ी ठीक करते हुए कहा ।

“क्यों न हो...आखिर वह मेरे भी तो कुछ है ।”

संध्या का यह वाक्य सुन कर तो मानो किसी ने उसे छुरा घोप दिया हो । संध्या इसे भाँप गई और उसकी शंका दूर करने के लिये भट बोली, मेरे जीजा...जिन्हें मैं बड़े समय से जानती हूँ ।”

“ओह दीदी...मैं न जाने क्यों डर गई थी...अच्छा सच बताओ दीदी वह कैसे लगते हैं तुम्हें ?”

बेला के इस प्रश्न पर वह हँसते हुए बोली—“क्या पूछा तुमने भी...जैसे कोई खाना खाते समय पास बैठे भिखारी से पकवानों का स्वाद पूछे ।” वह फिर हँसने लगी ।

बाजे की आवाज समीप आ गई । संध्या ने बालकनी पर भुके लड़कियों के झुँड को एक ओर करने के लिये हाथ बढ़ाया । उनमें से एक कह उठी, “अरी तू तो रोज ही देखेगी इन्हें...हमें तो देख लेने दे ।” इस पर सब खिलखिला कर हँसने लगी । बरात उसी समय कोठी के फाटक पर आकर रुकी और दोनों ओर से समधी फूलों के हार लिये बढ़े ।

जैसे ही आनन्द दूल्हा बना चबूतरे के नीचे से गुजरा ऊपर से सबने फूलों की वर्षा कर दी ।

दूल्हे के स्वागत के लिये बेला को भी कमरे की देहली तक जाना पड़ा । संध्या उसे सहारा दिये वहाँ तक साथ लाई । बेला ने देखा उसकी पलकों में छिपे आँसू किसी समय बरस जाना चाहते थे । उसे लगा जैसे उसे सहारा देने वाला स्वयं डूब रहा है ।

दुल्हन को सबने घेरे में ले लिया । आनन्द के भारी पाँव की दाब के साथ ही दोनों के मन की धड़कन तेज होती गई...दो नन्हें से दिल... जैसे पिंजरे की सलाखों से दो पक्षी टकरा रहे हों...एक भूख और प्यास से और दूसरा स्वतन्त्रता के लिये ।

आनन्द ने बेला को देखा । आज उसमें अद्भुत मोहिनी थी...उल्लास से आनन्द का मुख चमक उठा । फिर घूमती हुई उसकी दृष्टि संध्या पर पड़ी जो अपनी निराशा और उदासी को मुस्कराहट के पर्दे में ढाँपने का व्यर्थ प्रयत्न कर रही थी । क्षण भर के लिये वह टिकटिकी लगाये उसे देखना रहा और फिर आँखें नीची करके धरती को देखने लगा । संध्या ने बेला को जयमाल पहिनाते के लिए कहा और उसने बढ कर फूलों की माला आनन्द के गले में डाल दी । आनन्द ने भी मुस्कराते हुए फूलों का हार बेला को पहिना दिया और दोनों ओर से बधाई की बौछार होने लगी ।

संध्या एक ओर अलग होकर खड़ी हो गई । कभी-कभी भीड़ को चीरती उसकी दृष्टि आनन्द को छू जाती और हृदय के तारों में वह एक अजीब कम्पन सी अनुभव करती...उसने भी अपने लिये कुछ ऐसे ही सपने संजोये थे जो अघूरे रह गये...वह अपने आपको समझने का बहुत प्रयत्न करती पर भरा हुआ प्याला छलक ही पड़ा और उसकी आँखों से आँसू टुलक कर गालों पर आ रहे ।

“यह क्या संध्या...तुम रो रही हो...?” पास बैठी निशा ने प्रश्न किया ।

“जीवन का साथी जो बिछड़ रहा है,” वह होठों पर ज़बरदस्ती मुस्कान लाकर बोली। उसके मुँह से निकले यह शब्द बेला और आनन्द दोनों ने सुन लिये। आनन्द ने एक छिपे हुए नश्वर की चुभन अनुभव की और बेला के दिल में डाह की चिंगारियाँ तड़फने लगीं। दोनों के चेहरों का उड़ता हुआ रंग देखकर संध्या बात बदलते बोली—
 “अब तुम ही कहो ‘‘ जिसकी छोटी बहिन उससे बिछड़ रही हो उसके मन की क्या दशा होगी।’’ उसने अपनी बात को जारी रखा—‘‘यह जगमगाती बत्तियाँ ‘‘यह चहल-पहल ‘‘यह वसंत का सा समाँ ‘‘ यह सुगन्ध ‘‘ एक रंगीन रात ‘‘ और फिर यह रात कभी न लौटेगी ‘‘ मे अकेली रह जाऊँगी ‘‘ फिर क्या होगा ‘‘”

“पगली, यह क्या सोच रही हो ‘‘ संसार में ऐसा ही होता है ‘‘ बेला भी यहीं होगी और नये दूल्हा भी यहीं ‘‘

“पर इनकी दृष्टि यह न होगी,” संध्या ने यह शब्द स्वयं ही अपने मन में कहे। निशा उसके मन की गहराई से उठते धुएँ को भाँप गई और उसे अपने साथ बाहर ले गई।

“इतनी शीघ्र होश खो बैठी ‘‘ अभी तो तुम्हें तूफानों से टक्कर लेनी है,” निशा ने बाहर आकर संध्या को समझाते हुए कहा।

“ठीक कहती हो। मस्तिष्क मान गया पर मूर्ख मन को कौन समझाये।”

बाराती खा पीकर लौट गये। दूसरे लोग भी घरों को जाने लगे और धीरे-धीरे चहल-पहल समाप्त हो गई। संध्या एक कोने में बैठी यह सब देखती रही ‘‘ हर बीतती हुई घड़ी उसके जीवन की रौनक को मध्यम किये जा रही थी।

बेला को मण्डप में ले जाया गया। आज वह हमेशा के लिये आनन्द की हो जायेगी ‘‘ और फिर ‘‘ दोनों आँखों से दूर हो जायेंगे ‘‘ कितना कठिन होगा फिर उसके लिये कभी आनन्द से दो घड़ी बैठकर बातें करना भी ‘‘ वह वहीं बैठी खिड़की से नीचे आँगन में देख रही थी जहाँ सजे हुए

मण्डपमें दुल्हा दुल्हन अग्नि के सामने सदा के लिये एक दूसरे का रहने की शपथ ले रहे थे ।

संध्या के मन पर चोटें तो लगीं पर हर चोट से उसका आत्म-विश्वास बढ़ता गया...आँखों से ढुलके हुए आँसू गालों पर अपने चिन्ह छोड़कर सूख गये थे...उसका मन राख होने के बदले कुन्दन बनता जा रहा था ।

उसी समय उसे उन लोगों का विचार आया जिन्हें वह उठाना चाहती थी...उसे अपने लम्बे बीहड़ जीवन पथ पर उन्हीं की चीख पुकार सुनाई दी...उसे उन्हें अपना देने के लिये अपने आपको उन तक लाना होगा...गिरे हुए को भुक्त कर उठाना होगा...उसके मन में अब एकदो की नहीं हजारों की चाहत होगी...कुछ ऐसे ही विचारों में खोई वह फिर रोने लगी...आज वह जी भरकर रोना चाहती थी जिससे मन का गुबार पूरा धुल जाये ।

बाहर द्वार पर किसी के आने की आहट हुई और वह भट से सम्भल गई । द्वार खुलते ही वह सिर से पांव तक कांप गई...सामने फूलों का सेहरा पहिने आनन्द खड़ा था ।

“आप !” वह घबराहट में उठते हुए बोली ।

“हाँ संध्या, लगन मंडप से उठकर यहाँ आया हूँ ।”

“क्यों ?”

“जीवन की बाजी लगाने ।”

“कैसी बाजी ?”

“चलो भाग चलें,” उसने फूलों का सेहरा हाथों में मसलते हुए कहा ।

“नहीं, आनन्द यह सम्भव नहीं...बेला का अधिकार छीनकर मैं...”

“अधिकार...कैसा अधिकार...कहाँ का न्याय...तुम यही ढिंढारा पीटती रहोगी, चाहे तुम्हारे प्राण ही क्यों न चले जायें...यदि यह निर्व-

लता तुम में न होती तो बेला की क्या मजाल थी कि यूँ तुम्हारी अभिलाषाओं को लूट कर ले जाती ?” यह कहते हुए आनन्द बाहर निकल गया । संध्या उसे पुकारती हुई सिर निकाल कर खिड़की से नीचे देखने लगी ।

आनन्द और बेला आग के गिर्द फेरे ले रहे थे...तो क्या यह उसके अपने ही विचार थे...कल्पना थी जो उसे कहाँ ले गई...क्या उसने जागते हुए स्वप्न देखा था...वह स्वप्न में भी अपनी मानसिक निर्बलता को न छोड़ सकी...वह दोनों तो शहनाई के मधुर स्वर पर जीवन की रंगीन यात्रा की तैयारी कर रहे थे...आँसुओं की एक और धारा उसकी आँखों से बह निकली...एक नया सोता उबल पड़ा ।

पौ फटते ही आकाश पर चमकते हुए तारों को अपना मुँह छिपाना पड़ा...साथ ही संध्या के मन के अन्धकार में चमकते हुए आशा के कण मध्यम हो गये...आँखों से बहती हुई जल धारा सूख चुकी थी...रात के अन्धकार के साथ चेहरे की रौनक जा चुकी थी...जाने कब तक भूति बनी वह उस कमरे की मौन दीवारों को देखती रही जहाँ उसने बचपन से जवानी के वर्ष व्यतीत किये थे ।

घर वाले उसे ढूँढ़ते हुये उस कमरे में आ पहुँचे और संध्या को खींच कर नीचे ले जाने लगे...

“कहाँ जाना है मुझे ?”

“नीचे...बेला को बिदा करने...” उसकी चाची बोली ।

“ओह...तो वह जा रही है...इतनी शीघ्र ।”

“होश में तो हो संध्या,” निशा ने उसे सहारा देते हुए कहा... यह समय भूति बन कर बैठने का नहीं...चलो सब तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं...और हाँ चलते समय बेला की हथेली पर भी कुछ रखना होगा...वह तुम्हारी छोटी बहिन है ।”

धीरे-धीरे पाँव उठाती जब संध्या फाटक तक पहुँची तो सब रिश्तेदार और दूसरे मिलने वाले बेला को बिदा कर रहे थे । डोली के लिये

एक नई सुन्दर कार सजाई गई थी। संध्या कार के दूसरी ओर के द्वार के पास खड़ी हो गई जहाँ और कोई न था। लड़की को बिदा करते हुए सब की आँखों में आँसू थे...केवल संध्या की आँखें खुशक थीं...वह एकान्त में इतना रो चुकी थी कि अब उनमें जल की एक बूँद न थी।

भीतर भाँकते हुए संध्या ने आनन्द से कहा—

“ब्याह के दिन तो दुल्हन शर्मती है दूल्हा नहीं...फिर आप क्यों शरमा रहे हैं जीजा जी...?”

“नहीं तो...” आनन्द ने आँखें उठाकर ऊपर घबराहट को मुस्कान में छिपाते हुये कहा। ‘जीजा जी’ का शब्द उसने कुछ ऐसे ढंग से कहा था कि विषैले नाग के विष की भाँति उसके शरीर में उतर गया।

बेला ने मुँह मोड़ कर संध्या की ओर देखा और भर्राई हुई आवाज़ में बोली—“दीदी...”

‘बेला ! तुम जा रही हो...इन आँखों में पानी ही नहीं कि शगन के दो चार आँसू तुम्हारी जुदाई में अर्पण कर सकती...भगवान करे तुम दोनों सदा प्रसन्न और आबाद रहो।’ यह कहते हुये उसने चाँदी की एक डिबिया बेला के हाथ में रख दी और बोली, “मेरी छोटी सी भेंट ! इसे सदा अपने पास रखना...कहीं खो न देना ! और हाँ ध्यान रखना...बड़ा चंचल है इनका मन...एक छोटी-सी भूल के कारण मैं इन्हें खो बैठी...कहीं तुम्हारे हाथों से भी न निकल जायें ...”

संध्या के यह शब्द उस समय आनन्द को अच्छे न लगे परन्तु उसके मन की गहराइयों में करवटें लेता हुआ दर्द वह अवश्य अनुभव कर पाया।

बेला बात का पहलू बदलते हुये भट बोली—

“दीदी आग्रोगी न हमारे घर...”

“क्यों नहीं...एक बार बुलवाना तो ! दीड़ी आऊँगी।”

“देखना तो...जाते ही पहला पत्र तुम्हें लिखूँगी।”

“कहीं उस युद्ध के दो सिपाहियों की सी बात न करना ।”

“कैसी बात...” आनन्द ने पूछा ।

“रणभूमि में दो सिपाही भागे जा रहे थे उनमें से एक घायल हो गया । दूसरे ने उसे एक घने पेड़ के नीचे लिटा दिया और दिलासा देते हुए बोला, “मुझे जाने दो जाते ही पहला काम यह करूँगा कि डाक्टर और गाड़ी लाऊँ...”

“फिर क्या हुआ ?”

“वह चला गया... उसकी सहायता को कोई न पहुँचा... यहाँ तक कि मृत्यु तक को उस पर तरस न आया ।”

वह चले गये । राय साहिब और मालकिन भी भीतर चले गये... संध्या ने दूर तक बेला और आनन्द की गाड़ी को जाते देखा और जब वह दृष्टि से ओझल हो गई तो एक गम्भीर मुस्कान उसके होठों पर खेल गयी और वह स्वयं बोल उठी—“लो यह खेल भी समाप्त हुआ ।”

“कौन सा खेल ?” पास खड़ी निशा ने पूछा ।

“यह मुझा दिल और दर्द का खेल ।”

“सच... कितनी अच्छी हो तुम...”

“इसीलिए न कि दिल को पत्थर बना लिया है ।”

निशा चुप हो गई... जैसे उसने संध्या का उपहास उड़ाया हो ।

घर में इतने व्यक्ति होते हुए भी हर ओर उदासी और चुप्पी छाई थी ।

चिड़ियों के चहचहाने के साथ ही बेला की आँख खुल गई। उसने अपनी कोमल उङ्गलियों से पलकों को मसला...वातावरण में हर ओर सुगन्ध फैल रही थी...उसने एक लम्बा साँस लेते हुए कमरे की छत की ओर देखा...कवूतरों का एक जोड़ा ऊपर बैठ गटर गूँ कर रहा था।

साथ के बिस्तर पर आनन्द अभी तक मुख की नींद सो रहा था। उसने नाक सिकोड़ कर मुस्कराते हुए उसे देखा और अँगड़ाई ले कर बिस्तर से उठ बैठी।

बाहर की खिड़की खुलते ही किरणों ने कमरे की दीवारों का चुम्बन लिया। बेला ने भाँक कर देखा तो प्राकृतिक दृश्य से उसके मन में गुद-गुदी सी होने लगी...ऊँचे पर्वत...सुन्दर भीलें...भरनों से भरता हुआ जल—हर ओर हरयावल का ठाठें मारता हुआ समुद्र...उसके जवान हृदय ने अँगड़ाई सी ली...उसने फिर मुड़कर आनन्द को देखा—वह अभी तक सो रहा था—शायद उसे आज बड़े समय पश्चात् ऐसी निद्रा मिली थी।

द्वार पर आहट हुई और नौकर चाय की ट्रे लिये भीतर आया। बेला ने होठों पर उङ्गली रखते हुए उसे चुन रहने का संकेत किया और वह प्याला लेकर दबे पाँव आनन्द के बिस्तर पर बैठ गई। वह गहरी निद्रा में डूबा हुआ था...बेला धीरे-धीरे उसके मुख पर फूँकें मारने लगी...गर्म-गर्म साँस से दो-एक बार आनन्द ने आँखें भपकीं...जैसे ही

उसने बेला को अपने निकट बैठे देखा भट से आँखें बन्द कर लीं मानों उसने उसे देखा ही न था ।

बेला झुकी हुई उसके बालों से खेलने लगी । आनन्द ने वैसे ही नींद का बहाना करते हुए हाथ बाहर निकाल कर उसे कमर से पकड़ लिया । बेला मछली की भाँति तिलमिला कर तड़प उठी । आनन्द ने उसे खींच कर सीने से लगा लिया । बेला की वह तड़प एक मधुर आनन्द में परिवर्तित हो गई । उसने अपने शरीर को आनन्द के हाथों में ढीला छोड़ दिया । आनन्द के होंठ का उसके कोमल कपोलों से खिलवाड़ उसके मन में गुदगुदी करने लगा...बेला ने आँखें बन्द कर लीं ।

“बेला...!” आनन्द के होठों ने उसके गालों को गुदगुदाते हुए कहा ।

“जी !”

“दोनों इस मंजिल तक आ पहुँचे...इसे तुम्हारी जीत समझूँ या अपनी हार...”

“मेरी जीत...”

“वह कैसे ?”

“आप तो भटके हुए यात्री थे जिसे अपनी मंजिल का ज्ञान न था ।”

“नहीं बेला...ऐसा नहीं...मंजिल भी सामने थी और रास्ता भी साफ़ ।”

“तो...”

“चलते-चलते एक सहयात्री से जान पहचान हो गई जिसने किसी और मंजिल का रास्ता दिखा दिया जो पहली से कहीं बढ़कर आकर्षक, सुन्दर और मोहक था ।”

“सच मेरे देवता...?” बेला ने अपने गाल जोर से आनन्द के होठों से भींचते हुए पूछा ।

“हाँ बेला...तुम में कुछ अछूती मोहिनी थी...हर, भाव में एक आकर्षण...हर बात मन में उतर जाने वाली ।

अचानक बेला को चाय का ध्यान आया जो साइड टेबल पर रखी ठंडी हो चुकी थी। वह प्याला उठाकर बाहर चली गई।

आनन्द तकिये का सहारा लेकर बिस्तर पर बैठ गया और खुली हुई खिड़की में से पहाड़ियों की चोटियों को देखने लगा। ऊँचाई से गिरते हुए भरने की आवाज स्पष्ट सुनाई दे रही थी...कितना सुन्दर प्राकृतिक दृश्य था...उसने यही स्थान मधु मास के लिए चुना था।

उसके मस्तिष्क के चित्रपट पर सुन्दर दृश्य घूमने लगे। उनमें एक चित्र संध्या का भी था...उदास, मौन, घबड़ाई हुई सी...टिकटिकी लगाये...उस नदी की भाँति जो मंजिल का ज्ञान न होते हुए भी बहे जा रही है...सूर्य की सुनहरी किरणें और चंदा की रूपहली चाँदनी कभी कभाक उन उदास तरंगों में भी गुदगुदी भर देती...इन बातों का विचार आते ही आनन्द थोड़े समय के लिये अपने आप में खो गया।

बाहर बेला की आवाज ने उसके विचारों का ताँता तोड़ दिया... अब उसके सम्मुख मौन नदी के स्थान पर ऊँचाई से गिरता हुआ भरना था जिसकी गति में शोर था, हलचल थी...उसकी लहरों में उदासी के स्थान पर चंचलता छिपी थी...उसकी बेला भी तो वैसा ही एक भरना थी...यौवन का सुन्दर भरना...उसके हाव-भाव में शरारत थी...उसकी गति में उमड़ती मस्ती...उसकी बातों में हलचल...नदी और भरना... संध्या और बेला...

आहट हुई और वह सँभल गया। बेला चाय का प्याला लिए उसकी ओर बढ़ रही थी। वह अपने विचारों में खोया खोया-सा उसे देखने लगा।

“किस दुनिया में खो गये,” बेला पास आते बोली।

“नहीं तो...सोच रहा था यह चाय से उठता हुआ धुँआ तुम्हारे मुखड़े को चूमकर कहाँ लुप्त हो जाता है?”

“ओह...तो आप कविता करने लगे।”

“मेरी कविता तो अब तुम हो जिसे पढ़ने का प्रयत्न कर रहा हूँ,” आनन्द ने चाय का ग्याला पकड़ते हुए कहा ।

बेला उसके पास बैठ गई और ध्यानपूर्वक उसके चेहरे को निहारने लगी जिस पर सूर्य की किरणों अपना उजाला डाल रही थीं ।

थोड़े समय पश्चात दोनों तैयार होकर बाहर निकले । आज उनका घोड़ा-सवारी का प्रोग्राम था । किराये के दो घोड़े पहले से ही तैयार थे—एक सफेद और दूसरा काला । सफेद घोड़े की बाग पर बेला का हाथ पड़ा और काले घोड़े की बाग को मुस्कराते हुए आनन्द ने थाम लिया । दोनों सवार होकर पर्वतों में जाती एक पगडंडी पर हो लिये—घोड़ासवारी में दोनों अनाड़ी थे । आनन्द की इच्छा तो सवारी की न थी परन्तु बेला की प्रार्थना को वह न टाल सका । उसने अंग्रेजी फिल्मों में कुछ ऐसी ही बातें देखी थीं जिन्हें अब वह अपने जीवन में अपनाना चाहती थी ।

वह आरंभ में ही आनन्द के मस्तिष्क पर छा जाना चाहती थी जिससे वह बोते हुए समय के विषय में कभी सोच न सके—“वह संध्या की कल्पना—” उससे सम्बन्धित रंगीन सपनों और चोरी छिपे उसकी आँखों में भर आते आँसुओं को सदा के लिये मिटा देना चाहती थी जिससे भूले भी वह कभी उमे याद न कर पाये ।

प्रकृति ने स्त्री के स्नेह और कोमलता से भरपूर हृदय में डाह भी कूट-कूट कर भर रखा है—“यही जलन बेला के हृदय में हर समय उभरती रहती—” संध्या के यह शब्द, “बेला देखना, बड़ा चंचल मन पाया है इन्होंने, एक छोटी-सी भूल से मैं इन्हें सदा के लिए खो बैठी, कहीं तुम्हारे हाथों से भी न निकल जायें—” प्रायः याद आकर उसे चिन्ता में डुबो जाते ।

घोड़े पर बैठे-बैठे अब भी यह विचार उसकी मधु-मास की उमंग को घुँघला बना रहे थे ।

“यह मलीनता कैसी ?” आनन्द ने उसके मुँह से चिन्ता के चिन्ह पढ़ते हुए पूछा ।

“नहीं...कुछ नहीं...वह भट से चेहरे पर मुस्कान लाते हुए बोली और घोड़े की बाग खींच उसके बिल्कुल समीप हो गई ।

घोड़े सड़क पर पाँव से पाँव मिला कर चले जा रहे थे मानो फीज के दो सिपाही बढ़े जा रहे हों...ज्यों-ज्यों घोड़ों की चाल बढ़ती इनके दिल की धड़कन भी तेज होती जाती ।

हर और निखरा हुआ सबज्जा उनके उल्लास को बढ़ा रहा था...भरनों की भर-भर की तान निकट होती जा रही थी । कहीं-कहीं आकाश में डोलते हुए बादल के टुकड़े पहाड़ों की चोटियों को चूम कर भाग जाते...आनन्द हर थोड़े समय बाद बेला को देख लेता जिसके बिखरे हुए केश पवन भक्तियों से अठखेलियाँ कर रहे थे ।

चलते-चलते बेला कुछ गुनगुनाने लगती...उसका हर भाव आनन्द के अतृप्त मन की कसक को बढ़ा देता...उसकी हर दृष्टि बिचारे के मन पर कौंदा सा बन कर लपकती । वह लपक कर उसका हाथ पकड़ने का प्रयत्न करता तो वह भटक कर उसका हाथ परे कर देती और घोड़े को आगे बढ़ा ले जाती...उसके बढ़ते हुए उत्साह में उसे एक आनन्द अनुभव होता...यही भूख आनन्द को उसके लिए पागल बनाये रखेगी...और वास्तव में आनन्द के लिए इस प्यार की अतृप्ति में भी एक आनन्द था...उसके कान बेला की मधुर तान का रस पान कर रहे थे...यह जीवन...यह यौवन...यह उल्लास फिर कहाँ ?

इसी छेड़-छाड़ में बेला की कलाई आनन्द के हाथ में आ गई और उसने उसे खींचते हुए अपने सूखते हुए होंठ उसके होठों से मिला दिये...

बेलाके घोड़े ने एड़ियों पर उछलते हुए हिनहिनाना आरंभ कर दिया और सरपट भागने लगा । सतुलता बिगड़ जाने से बेला नीचे लटकने लगी ।

उसकी चीख-पुकार सुनकर आनन्द खिलखिला कर हँसने लगा और अपने घोड़े को उसके पीछे डाल दिया ।

कुछ दूर जाकर घोड़े ने बेला को ज़मीन पर फेंक दिया और स्वयं गर्दन मोड़कर दूसरे घोड़े को देखने लगा । आनन्द ने झट से बाग खींची और उछल कर अपने घोड़े से नीचे उतर आया ।

धरती पर बेला पीड़ा से कराह रही थी । उसकी बांह पर चोट आ गई थी और लहू के कतरे ब्लाटिंग-पेपर की भांति उसके खिंचे तंग ब्लाउज पर फैल गये थे । आनन्द ने उसका सिर उठाकर अपनी गोद में रख लिया और झट जेब से रूमाल निकाल कर कसकर उसकी बांह पर बांध दिया और उसके गले में बंधा हुआ रूमाल खोलकर जल लाने के लिये पास बहती हुई नदी की ओर भागा ।*** उसका यह उत्साह देखकर पीड़ा में कराहते हुए भी बेला के मन में गुदगुदी सी होने लगी । उसे चोट की इतनी चिन्ता न थी जितना यह जानकर उसे प्रसन्नता हुई कि उसकी साधारण सी चोट आनन्द के लिए कितनी बड़ी चिन्ता का कारण बन गई है ।

आनन्द के लौटते ही बेला गम्भीर हो गई । उसने भीगा हुआ रूमाल चोट पर बांध दिया और माथे पर से पसीना पोंछते हुए पूछा—

“कहीं चोट अधिक तो नहीं आई ?”

“चोट तो साधारण है परन्तु पीड़ा न जाने क्यों बढ़ती जा रही है ।”

“वह क्यों ?”

“आप जैसे डाक्टर हों तो पीड़ा क्यों नहीं बढ़ेगी ?”

“कैसी पीड़ा ?” आनन्द ने उसकी बांह को मलते हुए पूछा ।

“मीठी-मीठी सी...” वह मुसकराते बोली ।

“कहाँ ?” आनन्द ने बनते पूछा ।

“दिल में ।”

“लाओ तो कम कर दो ।” आनन्द ने अपना हाथ उसके जलते हुए

सीने पर रख दिया और उसके हृदय की धड़कन को अनुभव करने लगा...धड़कन की हर ताल उसकी नसों में बिजली सी भरने लगी।

“दिल की धड़कन जाँच रहे हैं क्या ?”

“तुम्हारी पीड़ा बाँट रहा हूँ...ऐसा अनुभव होता है वह पीड़ा बिजली बन कर मेरे दिल में भी उतर रही है।”

“लाओ तो देखूँ...”बेला ने अपना हाथ आनन्द के दिल पर रखते हुए कहा...आनन्द उसके कुछ और समीप हो गया...दोनों यह बच्चों का सा खेल देखकर मुस्कराने लगे। आनन्द ने उसे अपनी बांहों में जकड़ लिया...बेला भी उसकी चौड़ी और खुली छाती से लिपट कर अपनी पीड़ा को कम करने लगी। दोनों के शरीर में ज्वाला सी धधक रही थी जिसे बुझाने के लिए वे अंगारों में ठंडक ढूँढ़ रहे थे।

दोनों को तब मुघ आई जब पास ही खड़े एक बालक चरवाहे ने घोड़े की दुम पकड़ कर भटके से उसके बाल खींचे। घोड़ा बिदक कर जोर से हिनहिनाया और दोनों चौंक कर उठ बैठे। लड़का खिल-खिला कर हँसता हुआ नीचे ढलान की ओर भागने लगा...उसकी हँसी की आवाज़ वातावरण में गूँज रही थी मानो उसे कोई निधि हाथ आ गई हो और वह अपने साथियों को उसकी सूचना देने जा रहा हो।

दोनों मुस्कराते हुए उठे और अपने-अपने घोड़े की बाग सँभाल पैदल ही उस टीले पर जाने लगे। भरने की आवाज़ समीप होती जा रही थी।

थोड़े ही समय में वह उस ऊँचे स्थान पर जा खड़े हुए जहाँ से आसपास का सारा दृश्य स्पष्ट दिखाई दे रहा था...दूर दृष्टि तक फैली हुई हरयाली आँखों में ठंडक भर रही थी...ऊँचाई से गिरता हुआ जल भरने का रूप धारण करके पिघली हुई चांदी की एक मोटी तह ज्ञात होता था।

“कितना सुन्दर दृश्य है...मन चाहता है इस बहती हुई चांदी में कूद पड़ूँ,” बेला ने मौन तोड़ते हुए कहा।

“न, न...ऐसा न करना...” आनन्द भट बोला।

“खो ही तो जाऊँगी, नीचे आकर दूँढ निकालना।”

“नहीं बेला...वह इतना सरल न होगा...स्त्री भी इस भरने के समान उँचाई पर ही अच्छी लगती है, एक बार नीचे गिर जाने से वह अपना सब कुछ खो बैठती है...जैसे यह जल...देखो तो नीचे गिरते ही छोटी-छोटी नालियों में बंट गया और अब बस्ती का कूड़ा अपने साथ ले जायगा।”

“बेला आनन्द की यह दार्शनिक बात सुनकर चुप हो गई। उसे ऐसे समय में यह तुलना अच्छी न लगी, परन्तु इसे जतलाकर प्रसन्नता को फ्रीका करना उसने उचित न समझा और उसे हाथ से खींचते हुए टीले के दूसरी ओर ले जाने लगी...वह इस रमणीक दृश्य की भाँति आनन्द के मस्तिष्क पर छा जाना चाहती थी। वह कभी भी आनन्द के मन में संध्या या किसी और का विचार न सह सकती थी।...वह यह चाहती थी कि उसकी हर तड़प, हर याद और हर मुस्कराहट के पीछे केवल उसी की छवि हो...”

आनन्द भी उसके हाव-भाव में खोया उस रसपूर्ण सुन्दर दुनिया की ओर खिंचता जाता। कभी-कभी तो वह ऐसा अनुभव करता कि प्रकृति ने यह उपहास उसकी अच्छाई के लिये ही किया है...जीवन का जो आनन्द वह बेला की संगत में पा रहा है शायद उसका एक अंश भी संध्या के साथ न पा सके...संध्या के साथ बीते हुए दिन उसे चन्द अधूरे सपनों के समान लगने लगे जिन्हें मन बहलाव के लिये कभी-कभी याद कर लिया जाता है...वह सपनों को अधूरा क्यों छोड़ दे...क्यों न उनकी डोरी बेला से मिला दे...संध्या तो एक सपना थी जो समाप्त हो गई और बेला एक वास्तविकता जो भाग्य ने स्वयं उसके जीवन को रसमय बनाने के लिये भेज दी हो।

उन्हीं पहाड़ियों पर यौवन की तरंगों पर नाचते-कूदते उनकी भेंट बम्बई की एक प्रसिद्ध फ़िल्म कम्पनी के मालिक से हो गई जो उन दिनों अपनी पार्टी के साथ किसी फ़िल्म की शूटिंग के लिये वहाँ आया

था। उनकी भेंट आर्ट डायरेक्टर मिस्टर हुमायूँ द्वारा हुई जो फिल्म जगत का माना हुआ मेकअपमैन था। उसका जीवन लोगों को नये-नये रूपों और ढंगों में प्रस्तुत करते बीत चुका था।

दिल्ली ही दिल्ली में हुमायूँ ने बेला से कहा कि उसका चेहरा फोटोग्राफिक ऐंगल्ज के लिये बड़ा अच्छा था। बेला अपनी इस प्रशंसा पर फूली न समाई और उसी मुद्रा में बोली—

“क्या यह भी सम्भव हो सकता है कि आप हम दोनों की तस्वीर इस फिल्म में उतार लें।”

“क्यों नहीं?” यह कहते हुए हुमायूँ ने उन्हें अलग खड़ा कर दिया और थोड़े ही समय में उन्हें भी शूटिंग के उस दृश्य में ले लिया जिसमें बहुत से आदमी पिकनिक करते हुए दिखाये गये थे। आनन्द के विवाह के पश्चात् हुमायूँ की यह उससे पहली भेंट थी और उसने दोनों को रात को खाने पर आमन्त्रित किया।

खाने पर फिल्मी जगत के और व्यक्ति भी सम्मिलित थे। बेला का सौंदर्य, उसकी चंचलता और उसकी बातें सबको प्रभावित कर रही थीं। बातों ही बातों में बेला ने बताया कि उसे कालिज के दिनों में ड्रामे खेलने का कितना चाव था। उसकी बातों पर सब से अधिक सेठ मखनलाल मोहित हुए जो कम्पनी के मालिक थे। सेठ जी ने उसी सभा में अपनी दूसरी फिल्म के लिये बेला को हिरोइन का पार्ट पेश किया।

“नहीं...क्षमा कीजियेगा...बेला को यह जीवन बिल्कुल पसन्द नहीं,” भट से आनन्द कह उठा।

बेला आनन्द की इस जल्दबाजी पर उसकी ओर देखने लगी और सभा में बातचीत का तुल्य रखने के लिये बोली—

“आप ठीक कहते हैं...हम घर गृहस्थी की जंजीरों में जकड़ी हुई स्त्रियों के लिये तो वही स्टेज चाहिये जहाँ हम अपने जीवन को ऊँचा उठा सकें।”

जब खाने के बाद दोनों प्रपने ठिकाने पर लौटे तो बेला से न रहा गया और अप्रसन्नता प्रकट करते हुए बोली—

“सेठ मखनलाल की बात में बुरा मानने वाला क्या था कि आपने उसे बीच में ही टोक दिया।”

“बेला ! तुम नहीं समझती इन फ़िल्मी सेठों को...फ़िल्म कन्ट्रेक्ट तो यह जेब में उठाए घूमते हैं...जहाँ कोई सुन्दर मुखड़ा देखा भट दाँत निकालकर सामने रख दिया।”

“ओह...तब हम भी उन सुन्दर मुखड़ों की गिनती में आते हैं...”
बेला ने घमण्ड से गर्दन उठाते हुए कहा।

आनन्द उसका यह भाव देख मुस्करा पड़ा।

अवकाश के दिन यूँ उड़ते गये जैसे हवा के साथ डाली के फूल। बम्बई लौटने से पहले आनन्द को खंडाला में अपने माता-पिता से मिलने जाना था। इसलिये वह एक दिन पूर्व ही वहाँ से खंडाला चले आये।

मुसराल वालों में मिलजुल कर रहने का बेला का यह पहला ही अवसर था। सारे घराने में उसे कोई भी अच्छा न लगा। जितना आनन्द नये विचारों का था उतने ही उसके धर वाले रूढ़ीवादी थे।

घर में ससुर और सास के अतिरिक्त उसकी एक ननद और देवर भी था। ननद पंजाब में किसी पुलिस इंस्पेक्टर से ब्याही थी और देवर देवलाली में मिशन स्कूल में पढ़ता था। ब्याह के अवसर पर सब इकट्ठे थे और बड़े चाव से भाभी की प्रतीक्षा कर रहे थे।

बेला ने पहले ही दिन से अपने आपको एक अलग कमरे में बन्द रखा। वह किसी से भी अधिक लगाव बढ़ाना न चाहती थी। वह तो हर समय अपने आसपास आनन्द ही को देखना चाहती थी और उससे भी यही आशा रखती थी कि वह सबको छोड़कर उसी के पाँव में पड़ा प्रेम की भिक्षा मांगता रहे।

नई नवेली दुल्हन थी इसलिये उसका यह ढंग किसी को बुरा न लगा । सब यही समझे कि शायद नये स्थान पर आकर उदास हो गई होगी ।

छुट्टी समाप्त होते ही दोनों बम्बई लौट आये । आनन्द को अपने प्लैट में कुछ परिवर्तन करवाना था इसलिये वह राय साहिब के यहाँ ही ठहरा ।

दोनों को दोबारा देखकर घर में फिर चहल-पहल हो गई । घर आकर बेला की दृष्टि ने सबसे पहले यह जाँचना चाहा कि कहीं संध्या तो वहाँ नहीं और उसे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि वह वहाँ नहीं है । वास्तविक प्रसन्नता तो उसे तब हुई जब उसने देखा कि आनन्द ने पूरे दिन संध्या के विषय में कुछ न पूछा और जब कभी उसका नाम आया भी तो उसने ध्यान न दिया ।

बेला को न जाने क्यों संध्या से हर समय भय सा लगा रहता, जैसे चोर को पुलिस वाले से...कई बार तो वह अपने आपको चोर ही अनुभव करती...इसमें भूठ ही क्या था...उसने भी तो संध्या का प्यार चुराया था...धोखे से...छल-कपट से...यह बातें सोच वह प्रायः काँप उठती ।

दूसरे दिन जब आनन्द दफ्तर चला गया तो बेला ने संध्या के विषय में घर वालों से कुछ जानने के लिये सोचा परन्तु साहस न कर सकी...उसका नाम भी होठों पर लाते हुए उसे भय लगता...आखिर साहस बटोर कर उसने रेनु से पूछ ही लिया ।

कभी-कभी यहाँ आ जाती है, इससे अधिक रेनु कुछ न बता सकी ।

बातों ही बातों में माँ ने संध्या का नाम लिया तो बेला ने उत्साह दिखाते हुए पूछा—

“कहाँ है वह अब, ममी ?”

“नीलकंठ में ।”

नीलकंठ का नाम सुनते ही वह सोच में पड़ गई। ऐसा ही नाम उस लाकट पर खुदा हुआ था जो आनन्द ने उसे उपहार में दिया था। दो क्षण मौन रहने के पश्चात् वह फिर बोली—

“नीलकंठ ? यह क्या है ममी,”

“एक छोटी सी बस्ती है जो तुम्हारी दीदी ने गरीबों के लिये बसाई है... सुना है कोई बड़ा कारखाना लगा रही है।”

“अच्छा...” अपनी मानसिक उलझनों को इस एक शब्द में समेटते हुए वह चुप हो गई।

दूसरे दिन वह अकेले ही खोज लगाती वहाँ जा पहुंची जहाँ संध्या ने नीलकंठ की बस्ती बसाई थी... वह छोटी सी बस्ती बेला के अनुमान से कहीं बड़ी थी : घाटकोपर से गुजरती आगरा रोड के किनारे एक खुले मैदान को घेर कर वह अपने सपने की वास्तविकता का रूप दे रही थी। कितने ही मजदूर अथक परिश्रम करते हुए उसे बना रहे थे।

मजदूरों की भीड़ को चीरती हुई वह मध्य में बनी कुटिया के समान एक कोठी के पास जा रुकी जिसके सामने बड़े शब्दों में लिखा था ‘नीलकंठ’। यही संध्या के रहने का स्थान था और वह इस समय भीतर ही थी। बेला ने बाहर के बरामदे में से भीतर झाँकने का प्रयत्न किया पर किसी की आवाज ने उसे चौंका दिया।

“बाहर लगी हुई घण्टी बजाइये, मेम साहिब,” पास ही क्यारियों को खोदते हुए एक माली ने कहा।

बेला ने घण्टी का बटन दबाया और द्वार खुलते ही संध्या सामने आ खड़ी हुई। कुछ क्षण दोनों बहिनें भूर्ति बनीं एक दूसरे को देखती रहीं और फिर एक दूसरे से लिपट गईं। दोनों की भीगी आंखें एक दूसरे को धन्यवाद करने लगीं... एक किसी के उपकारों का और दूसरे किसी के अनोखे बलिदान का।

“कब आई बेला ?” संध्या ने खींचकर उसे कमरे में लाते हुए पूछा।

“कल...आते ही तुम्हें घर न देखा...यहाँ चली आई।”

“ओह...कैसे धन्यवाद करूँ तुम्हारे इस उपकार का।”

“इसमें उपकार कैसा दीदी...यह तो मेरा कर्तव्य था।”

“कैसे है अब वह...मिस्टर आनन्द...तुम्हारे पति...” संध्या ने बात बदलते हुए जरा रुक-रुककर पूछा।

क्षण भर के लिये तो बेला अस्थिर हो गई। आनन्द के विषय में सुनते ही वह चौंक सी गई पर सहसा सम्भलकर बोली, “अच्छे हैं।”

“उन्हें भी ले आई होती।”

“बहुत कहा...पर माने नहीं।”

“क्या बोले?” उत्साह भरी दृष्टि से देखते हुए संध्या ने पूछा।

“कहने लगे तुम जाओ... मैं न जाऊँगा अब उसके यहाँ।”

बेला की इस बात ने संध्या के मन को ठेस सी लगाई पर वह संभल गई और मुस्कराते हुए बोली—

“उनकी इच्छा...तुम तो आया करोगी न।”

“क्यों नहीं...कहो तो उन्हें भी खीच कर ले आऊँ।”

“नहीं बेला...वह जहाँ भी रहें प्रसन्न रहें...मेरी तो यही प्रार्थना है भगवान से...तुम क्यों खीच के लाओ उन्हें...एक दिन वह स्वयं खिंचे चले आयेंगे।”

संध्या की इस साधारण बात में कितना दृढ़ विश्वास था। बेला के मन पर तो यह बात हथौड़े की सी चोट कर गई। वह कुरसी से उठी और खिड़की से झाँकते हुए बोली—

“दीदी ! यह सब क्या है ?”

“एक नई बस्ती...एक नया संसार...मेरी अधूरी कल्पना जो वास्तविकता का रूप धारण कर रही है।”

“तुम तो आज हर बात कविता में कहने लगीं।”

“पगली ! तू ने तो अभी जीवन में पाँव रखा है हम तो जीवन लुप्त

बैठे और अब उस मोड़ पर खड़े हैं जहाँ संसार की हर वस्तु अपने नग्न और बिखरे हुए रूप में दिखाई देती है।”

“छोड़ो यह दार्शनिक बातें और कहो कि यह सब क्या बन रहा है।”

“कह जो दिया कि नया संसार बसा रही हूँ... गरीबों और बेकारों के गाढ़े पसीने से रत्न निकालने के स्वप्न देख रही हूँ... यह सामने देखती हो... मोटर गाड़ी के पुर्जे बनाने का कारखाना लग रहा है... बम्बई के एक करोड़पति सेठ की साझीदार हूँ... इस कारखाने का हर मजदूर इस काम में अपनी पत्ती रखता है।”

“सो यह है... विचार तो बड़े ऊँचे हैं... पर यह पुर्जे बनाने की क्या सूझी... कुछ करना ही था तो मोटरे बनाने का कारखाना लगा लेना था।”

‘नही बेला, वह तुम्हीं बड़े लोगों को शोभा देता है। हमतो यही बना सकते हैं ताकि जब कभी तुम बड़े लोगों की गाड़ी चलते-चलते रुक जाये तो उसका कोई टूटा पुराना पुर्जा बदलने को हम गरीब लोग कंधा दे सकें।’

संध्या की यह साधारण सी बात बेला के मन पर जलते अंगारों का काम कर गई। इसके बाद वह कोई और प्रश्न न कर सकी और चुपके से उठकर वहाँ आ बैठी जहाँ संध्या उसके लिये चाय बना रही थी।

बेला चली गई और संध्या बैठी उसके विषय में सोचने लगी... एक नन्हीं सी बच्ची उसी के संग प्यार और स्नेह में बड़ी हुई... और आज यह भी न हो पाया कि अपने मन का हाल उससे कह सके... वह बीते हुए जीवन की स्मृति में इतना खो गई कि उसे यह भी ध्यान न रहा कि सामने रखी हुई चाय बरफ हो रही है।

“चाय ठंडी हो रही है।”

किसी के इस वाक्य ने उसे जगा सा दिया। उसने चौंक कर सामने

देखा। दरवाजे के पास आनन्द खड़ा मुस्करा रहा था। थोड़ी देर के लिये तो उसे विश्वास न आया कि वह जो कुछ देख रही है क्या वह ठीक है।

उसे आश्चर्य में देख कर आनन्द पाँव उठाता स्वयं उसके पास आ गया। वह वैसे ही मौन उसे देखती रही...आने वाले अतिथि के स्वागत में उसके मुँह से एक भी शब्द न निकल सका।

“आप...” बड़ी कठिनाई से आखिर उसके होंठों से निकला। वह उठी और अपनी साड़ी का आँचल ठीक करते हुए अपनी घबराहट को उसमें लपेटने लगी।

“कहिये अवकाश मिल गया?”

“तो तुम्हें पता चल गया कि हम आ गये?”

“जी, थोड़ी ही देर पहले बेला आई थी।”

“बेला! यहाँ आई थी? कब?”

“जैसे आपको कुछ खबर ही नहीं...यह भी किसी और ने उसे कह दिया होगा कि मैं संध्या से मिलना नहीं चाहता।”

आनन्द समझ गया कि बेला ने उसके विषय में यह कह दिया होगा। वह भट उसकी बात छिपाने के लिये मुस्कराते हुए बोला—

“ओह!” इसमें भी कोई भेद था।”

“कैसा भेद...” संध्या ने उसी गम्भीर मुद्रा में पूछा।

“उसके सामने मैं तुमसे खुलकर बात न कर सकता।”

“परन्तु यह बात आपको शोभा नहीं देती।”

“क्या?”

“अपनी पत्नी को धोखा देना...आपके एक तनिक से छल ने मुझे तो कही का न रखा...अब बेला के जीवन का तो ध्यान रखिये।”

“संध्या! तुम्हारा भ्रम मैं क्योंकर दूर करूँ...कभी तो सोच

समझ से काम लिया होता...मैं इतना बुरा नहीं जितना तुमने समझ रखा है।”

“मेरी समझ से क्या होता है ?”

द्वार पर आहट हुई और दोनों चुप हो गये। सुन्दर भीतर आया।

“क्या है सुन्दर...ओह यह मिस्टर आनन्द...बम्बई की एक मोटर कम्पनी के मैनेजर...”

“नमस्ते...शायद पुर्जों के विषय में कोई एग्रीमेन्ट करने आये हैं।”

“यह अपनी गाड़ी में कोई देसी पुर्जा लगाना पसन्द नहीं करते...” आपने जीवन साथी भी तो ‘फारन मेक’ चुना है ?”

संध्या की इस बात पर सुन्दर जोर से खिलखिला उठा और फिर उसे एक ओर ले जाकर उमके कानों में कोई बात कही जिसे सुनकर संध्या आनन्द के पास आते हुए बोली—“मुझे किसी आवश्यक काम से अभी जाना है...यदि समय हो तो थोड़ी प्रतीक्षा कीजिये...मैं शीघ्र लौट आऊँगी।”

“फिर कभी सही...अभी मैं चलता हूँ” यह कहते हुए आनन्द बाहर जाने लगा। संध्या चुप रही और आनन्द के साथ द्वार तक आई।

“कारखाना लग जाने पर अवश्य आइयेगा,” उसने जाते हुए आनन्द से कहा।

“क्या करूँ ? यहाँ तो सब देसी पुर्जे हैं और तुम जानती हो सब में खोट मिला होता है।”

आनन्द चला गया किन्तु उसकी आवाज बड़ी देर तक संध्या के कानों में गूँजती रही। सुन्दर के साथ बस्ती में बढ़ते हुए उसने एक दो बार मुड़कर आनन्द की गाड़ी को देखा जो धूल उड़ाती फाटक से बाहर जा रही थी।

जब आनन्द घर पहुँचा तो बेला ने सबसे पहिला प्रश्न यही किया—

“कहाँ रहे इतनी देर ?”

“एक मित्र से मिलने चला गया था...पर तुम भी तो अभी आई हो ।”

“यह आपने कैसे जाना ?”

“मेरे मन ने मुझसे कहा...क्यों झूठ है ?”

“नहीं तो...मैं भी एक सहेली से मिलने गई थी ।”

दोनों चुप हो गये...दोनों अपनी आत्मा के अपराधी थे...दोनों के मन चोर थे...इसलिये एक दूसरे से और प्रश्न करने का साहस न कर सके ।

जीवन के सुन्दर क्षण यूँ बीतने लगे जैसे धरती की चाल के साथ ऋतुएँ...आनन्द और बेला का जीवन भी एक नये दौर में भागा जा रहा था। वह अपने छोटे से घर में सब रंगीनियाँ भरने का दिन रात प्रयत्न करती जिससे आनन्द को उसके निकट कोई अभाव अनुभव न होने पाये...वह भूले से भी कभी ऐसा न सोच सके कि बेला में कोई ऐसी कमी है जिसकी पूर्ति संध्या ही कर सकती है।

इन सब सुविधाओं के होते हुए भी आनन्द कभी-कभी बहुत उदास हो जाता और अकेला बैठा घंटों सोचता रहता...प्रायः ऐसा तभी होता जब कभी भूले से बातों में संध्या का वर्णन आ जाता।

बेला ने इसी विचार को दूर रखने के लिये राय साहिब के यहाँ भी आना जाना छोड़ रखा था। वह दिन-रात कोई ऐसी विधि सोचती रहती जो संध्या और आनन्द के मध्य ऐसी दीवार खड़ी कर दे कि वह उसे सदा के लिये भुला दे। वह आनन्द की तड़प को भली प्रकार समझ रही थी। जबसे उसे इस बात का ज्ञान हुआ था कि बेला ने झूठ ही उससे कह दिया था कि वह उसके बच्चे की माँ बनने वाली है, वह अधिक बेचैन रहने लगा। बेला ने लाख अपनी सच्चाई का प्रमाण देना चाहा पर वह वास्तविकता को न छिपा सकी।

आनन्द को बेला की अदाओं पर प्रायः झुकना पड़ता। वह इस लड़खड़ाती हुई बेचैन जवानी को लुभाने का ढंग जानती थी। दफ्तर के

बाद शाम के समय को और रंगीन बनाने के लिये उसने समाज के बड़े लोगों से मेल जोल बढ़ाने के लिये परामर्श दिया। पहले तो आनन्द न माना परन्तु अन्त में बेला अपनी योजना में सफल हो गई। आनन्द इस छोटी सी हार को अनुभव न कर पाया पर बेला के लिये यह बहुत बड़ी जीत थी।

मिलने वालों में उनका पहला निशाना मिस्टर हुमायूँ था जो आनन्द का मित्र होने के अतिरिक्त एक विनोदप्रिय व्यक्ति भी था जो इस भाग्यवान दम्पति को देखकर कभी-कभी ईर्ष्या से कह उठता—

“मिस्टर आनन्द ! कितने खुशनशीब हो कि तुम्हें बेला जैसा जीवन साथी मिला...और हम हैं कि अपनी इस भूल पर अब तक पछता रहे हैं।”

“तो क्या ...”

“हां बेला...हमारे मित्र हुमायूँ के जीवन का यह सबसे दुखान्त भाग है,” आनन्द बात को पूरी करते बोला, “इनकी बीवी अति कुरूप है।”

“ओह...पर वह हैं कहाँ ?”

“अपने मायके...पहली ही रात भगड़ा हो गया, लौट कर नहीं आई...”

“तो यह आपकी निर्बलता है...भाग्य ने उसका पल्लू जो आपसे बांधा था उसकी रक्षा करना आप का कर्त्तव्य है।”

“भूल मेरी थी जो अब पछता रहा हूँ। वफा की जो उम्मीद मुझे उससे होती वह कोई हसीन चेहरा मुझे न दे पाता।”

“ओह ! तो आपके विचार में भी हुस्न बेवफा होता है,” बेला मुद्रा में गम्भीरता लाकर बोली।

“हमेशा नहीं लेकिन अवसर...” हुमायूँ ने नम्रता से उत्तर दिया।

आनन्द ताली पीटता हुआ चिल्लाया, “श्री चीयरज फ़ार ब्यूटी।”

इस पर सब खिलखिला कर हँस पड़े। हँसते हुये ही आनन्द ने बेला से पूछा —

“आप ही कहिये, क्या आपकी गिनती भी हसीनों में है ?”

“चलिये...हटिये...” “चंचल भाव से मुस्कराते हुए वह कुछ लजाई और मुँह फेर कर शायद मन ही मन कहने लगी, ‘हाँ मैं हसीन हूँ...’ मैं यह भी जानती हूँ कि तुम जैसे मुर्दा लोग भी मुझे देखकर नशे में भूम उठते हैं।”

हुमायूँ प्रायः उन्हें फिल्मी जगत में ले जाता जहाँ थोड़े ही दिनों में उनके कई मित्र बन गये।

हर संगत, हर सभा में बेला आनन्द के साथ छाया की भाँति लगी रहती, वह उसे कहीं भी डगमगाने न देती। आनन्द भी दिन-ब-दिन उसका दीवाना हुआ जा रहा था। वह समझती थी कि यह दीवानापन धीरे-धीरे आनन्द को उसी का बना देगा। इसी प्यार और प्रेम-भाव में कभी किसी भूल को जता वह उससे रूठ भी जाती। वह झुंझलाता, तर्क करता और अन्त में हार कर झुक जाता।

बेला उसकी हार देखकर मुस्करा पड़ती। वह उसे प्रेम की बेड़ियों में ऐसे जकड़ देना चाहती कि वह कभी भागने का साहस न कर सके। उसको यह दशा देखकर कभी-कभी उसे संध्या के उस वाक्य पर हँसी आ जाती, “देखना बड़ा चंचल मन पाया है, कहीं तुम्हें छोड़कर उड़ न जायें।”

एक सायंकाल जब दोनों रेनु के जन्म-दिन पर राय साहिब के यहाँ गये हुए थे तो संध्या भी वहीं बैठी थी। संध्या ने दोनों को अपने कार-खाने के खुलने के अवसर पर आने का निमन्त्रण दिया। आनन्द ने स्वीकार करते हुये कहा, “प्रयत्न करूँगा।”

“प्रयत्न कैसा, आप लोगों को अवश्य आना होगा।”

“बहुत अच्छा, यदि तुम्हारी यही प्रसन्नता है तो हम अवश्य आयेगे।”

“परन्तु उसी दिन तो हमें बाहर जाना है,” बेला बात काटते बोली
“कहाँ ?”

“मिस्टर हुमायूँ के साथ पिकनिक का प्रोग्राम जो बनाया है।”

“उसे देख लेगे,” आनन्द ने असावधानी से कहा और संध्या की ओर देखकर मुस्कराने लगा जैसे कह रहा हो कि तुम्हारा अधिकार पहला है हम अवश्य आयेंगे। संध्या उसके मन की बात भाँप गई और बेला के कन्धों पर हाथ रखते बोली—

“देखिये, बेला की बात पहले मानियेगा। हमारा प्रोग्राम तो होता रहेगा, कहीं मेरी लाड़ली बहन के प्रोग्राम में बाधा न पड़ जाये।”

संध्या की बात में व्यंग्य था जिसने एक नश्वर सा बेला के मन में चुभो दिया और वह उठकर खिड़की से बाहर भाँकने लगी। उसी समय उसके कानों में संध्या और आनन्द की हँसी की आवाज गूँजी। बेला को अनुभव हुआ जैसे वे उसकी बेबसी पर हँस रहे हैं। वह मन ही मन तिलमिला उठी।

वह दिन भी आ पहुँचा। संध्या ने टेलीफोन पर फिर याद दिलाया और आनन्द ने आने का वचन दे दिया। संध्या चाहती थी कि वह स्वयं आकर देखे कि उजड़ जाने के पश्चात् उसके मन से कितना खरा कुन्दन निकला है। आनन्द भी उसकी बात न टाल सका जैसे वह उस निराश मन को अपने हाथों कोई ठेस न पहुँचाना चाहता था।

जब उसने बेला को भी दूसरे दिन संध्या के यहाँ जाने का आदेश सुनाया तो वह सिटपिटा कर बोली,

“तो हुमायूँ साहिब की पिकनिक का क्या होगा ?”

“बिबश हूँ। यह दिन तो जीवन में एक ही है पिकनिक तो किसी और दिन भी हो सकती है।”

“तो प्रोग्राम बनाना ही न था।”

“मुझे क्या पता था...परन्तु बेला...”

“क्या ?”

“संध्या की ओर से तुम्हें यह मिथ्या सदेह कैसा ?”

“मुझे क्यों होने लगा...मेरी भी तो वह बहिन है...पर छोड़िये इन बातों को...आप जहाँ चाहे जा सकते हैं...”

“और तुम ?”

“मैं कहीं न जाऊँगी ।”

आनन्द उसकी इस विमुखता पर हँसकर चुप हो गया । वह जानता था कि थोड़े समय पश्चात उसका क्रोध ढल जायगा और वह स्वयं उसके संग चलने को तैयार हो जायेगी परन्तु हुआ इसके विपरीत...विवाह के पश्चात आज पहली बार बेला ने रूठ जाने की ठान ली । रात उसने खाना भी न खाया और चुपचाप बिस्तर में लेटकर पढ़ती रही ।

रात को सोते समय आनन्द ने पूछा, “आज कौन सा दिन है ?”

“सामने कैलेण्डर लटक रहा है ।”

“ओह, आई सी...”

उसी समय उनका नौकर विशनु पानी की सुराही रखने भीतर आया तो आनन्द ने उसे पुकारा ।

“जी सरकार...”

“आज मंगल है ?”

“नही सरकार आज तो शनीचर है ।”

“आज ही तो पूर्णिमा है न ?”

“नहीं साहिब आज तो अमावस है ।”

“तो आज यह व्रत कैसा ?”

आनन्द का यह प्रश्न सुनकर बेला की हँसी छूट गई । विशनु भियाँ बीबी का भगड़ा देख मुँह फेर कर हँसने लगा । आनन्द ने उसे शीघ्र मेम साहिब के लिये खाना लाने को कहा ।

“मेने कह जो दिया कि आज मुझे भूख नहीं।” बेला ने गम्भीर स्वर में कहा।

“वह तो मैं जानता हूँ, भूखा तो मैं हूँ...तुम्हारे प्यार का...” आनन्द ने हाथ बढ़ाकर उसे खींचते हुए कहा।

“छोड़िये भी विशनु आता होगा।”

“तो क्या हुआ?”

“जैसे कुछ हुआ ही नहीं।” उसने झुंझलाते हुए अपना हाथ छुड़ाने का व्यर्थ प्रयत्न किया।

“डरती क्यों हो व्याह करके लाया हूँ, भगा कर नहीं।”

इतने में विशनु थाली में खाना परोसे भीतर आया। दोनों ठिठक कर रह गये और एक दूसरे से थोड़ा दूर हटने का प्रयत्न करने लगे। विशनु ने पीठ मोड़ ली और बाहर जाने लगा। आनन्द ने आवाज़ देकर खाना उसके हाथों से ले लिया। विशनु के बाहर जाते ही वह बेला से बोला—

“आओ मेम साहिब, तुम्हारा व्रत तोड़ दूँ।”

“ऊँ हूँ...मेरा भी हठ है...आज न खाऊँगी।”

“तो मेरा भी सही...तुम्हें आज खिलवाकर ही छोड़ूँगा।”

“दोनों ओर हठ आ ठहरा तो निर्णय कैसे होगा।”

“फिफटी-फिफटी।”

“अर्थात्।”

“कुछ तुम भुको और कुछ...”

“आप...” बेला भट से बात पूरी करते बोली, “आप कल पिकनिक पर अवश्य चलेगे।”

“परन्तु एक शर्त पर।”

“वह क्या?”

“तुम्हें संध्या दीदी के यहाँ चलना होगा।”

“पर कैसे...इतना थोड़ा समय और इतनी दूर।”

“मैं मैनेजर की गाड़ी माँग लाऊँगा ।”

“तो ठीक है किन्तु अधिक समय वहाँ न ठहरेंगे ।”

आनन्द ने हाथ बढ़ाकर रोटी का एक ग्रास उसके मुँह में ठूस दिया । बेला खिलखिला उठी और उसने भी अपने हाथों से एक ग्रास आनन्द के मुँह में डाल दिया ।

दूसरा दिन इतवार था । इसलिये सवेरे ही दोनों तैयार होकर कम्पनी के दफ्तर जा पहुँचे परन्तु दुर्भाग्य से मैनेजर अपनी गाड़ी लेकर रात ही कहीं चला गया था । कम्पनी की स्टेशन-वैगन भी सर्विस के लिये खुली पड़ी थी ।

आनन्द उलझन में पड़ गया । उसे विश्वास था कि बेला इसी बहाने संध्या के यहाँ जाने से इंकार कर देगी । फासला बहुत था और पूरे दिन के लिये टैक्सी ले जाना भी कठिन था । वह इसी समस्या को सुलझाने की सोच रहा था कि बेला बोली—

“शोरूम में इतनी गाड़ियाँ जो रखी हैं...उनमें से एक क्यों नहीं ले चलते ?”

“यह सब नई हैं बाहर नहीं ले जाई जा सकतीं ।”

“तो क्या हुआ । एक दिन में कोई घिस थोड़े ही जायेगी ।”

“नहीं बेला किसी को ट्राई के लिये देनी हो तो थोड़ी दूर ले भी जायें...पर हमें तो शहर से बाहर जाना है ।”

“कौन देखता है ।”

“मेरी आत्मा...”

“सुला दो थोड़ी देर के लिये अपनी इस आत्मा को...रंग में भग डालने से लाभ—आप बीसवीं शताब्दी में महाभारत के काल की बातें करते हैं...इस नई गाड़ी में जाने से हमारी कितनी शान होगी ।”

“तो चलो संध्या के यहाँ...पापा मी आये होंगे...उनकी गाड़ी माँग लेंगे ।”

“तो आप जाइये” आज का प्रोग्राम कैंसल ही कर देते हैं,” बेला ने बिगड़ते हुए असावधानी से कहा ।

आनन्द उसके बहानों को समझता था और चाहता था कि आज छुट्टी के दिन कोई बदमगजी न पैदा हो जाए जो दोनों के मध्य कोई नया भ्रम खड़ा कर दे । आज पहली बार बेला के लिये उसने अपने जीवन के नियमों को बदल डाला ।

कम्पनी के रजिस्टर में उसने लिख दिया कि ब्यूक का नया माडल नवाब भूपाल को दिखाना है और गाड़ी निकाल कर बेला को आगे बैठने का संकेत किया ।

आज वह इस नई गाड़ी में बैठ कर ऐसा अनुभव कर रही थी मानो कोई महारानी अपने महाराजा के साथ प्रजा को दर्शन देने निकली हो । जहाँ आनन्द का मन नियम को तोड़कर अप्रसन्न था वहाँ बेला का मन हर्ष में फूला न समाता था कि आज आनन्द ने उसके लिये अपने जीवन का मार्ग बदल डाला ।

संध्या के यहाँ नई गाड़ी देखकर सब प्रसन्न हुए । बेला ने बातों-बातों में कहा, “यह गाड़ी आनन्द ने मुझे ब्याह पर उपहार में दी है ।”

बीबी के इस झूठ पर आनन्द मुस्करा दिया और उसका मान रखने के लिये उसने सबके सम्मुख यह स्वीकार भी कर लिया । संध्या ने आगे बढ़ कर उंगलियों से गाड़ी को छूते हुए कहा—

“नई गाड़ी और नई दुल्हन...छूते ही मैली हो रही है...सच पूछो तो किसी की नई गाड़ी को छूते हुए मन में वही भय उठता है जो पराई स्त्री को छूने से ।”

संध्या की इस बात पर सब खिलखिलाकर हँस पड़े और बेला को देखने लगे जो लज्जा से धरती में गड़ी जा रही थी ।

एक अच्छी खासी भीड़ थी...बेला के ब्याह से भी कहीं अधिक रौनक थी इस अवसर पर मिलने-जुलने और सगे सम्बन्धियों के अतिरिक्त

शहर के चुने कुछ व्यक्ति भी सम्मिलित थे। संध्या उत्साह और उल्लास से भरपूर कभी-कभी दृष्टि उठाकर आनन्द की ओर देख लेती मानो उससे पूछ रही हो, 'क्यों कैसा रहा मेरा ब्याह ?' उधर बेला को यह भीड़ अच्छी न लग रही थी और वह सबसे अलग एक कोने में जा बैठी।

तागा कटा, तालियों का शोर उठा और लोग कारखाने के भीतर प्रवेश करने लगे। हर ओर बड़ी-बड़ी मशीनों के साथ मजदूर एक जैसी वर्दी पहिने खड़े थे। भीड़ के आगे-आगे नन्हे पाशा उजले कपड़ों में लंग-ड़ाती हुई टाँग को खींचते बढ़े जा रहा था। जिस मशीन-मैन को वह संकेत करता मशीन चलने लग जाती और फिर वह लोगों को उस मशीन का काम और उसके चलने का ढग समझाता।

मशीनों का निरीक्षण करते हुए सब नीलकंठ पर जा रुके। सबने सामने दीवार पर खुदा हुआ यह शब्द दोहराया। आनन्द को लगा मानों कोई उसके जीवन के पन्ने उलटकर बीती हुई बातों को दोहरा रहा हो।

देखने वाले इस मादी और सुन्दर कुटिया की प्रशंसा कर रहे थे।

"कैसी लगी यह कुटिया," संध्या ने आनन्द को सम्बोधित करते हुए पूछा।

अपने विचार में खोया वह चौंक सा उठा। क्षण भर के लिये तो उसके माथे पर पसीने के दो एक कतरे झलक आये, पर सहसा ही वह अपने पर अधिकार पाते हुए बोला—

"सुन्दर... बहुत सुन्दर..."

"क्या सुन्दर?" पास खड़ी बेला ने बीच में बोलते हुए पूछा।

"यह घर... नीलकंठ... काश मैं भी एकान्त में ऐसा घर बना सकता," आनन्द ने संध्या की ओर देखते हुए बेला को उत्तर दिया।

"तो निश्वास क्यों भरते हैं... एक हम भी बनवा लेंगे।"

संध्या ने अनुभव किया जैसे आनन्द की यह बात बेला को नहीं भाई। अवसर को समझते हुए उसने नम्रता से बेला से कहा—

“घर की सुन्दरता में क्या रखा है, सुन्दरता तो मन में होनी चाहिये।”

लान में शामियाने के नीचे पार्टी का प्रबन्ध था और सब वहाँ जा बैठे। अभी पार्टी समाप्त भी न हुई थी कि बेला और आनन्द ने जाने की अनुमति चाही। उन्हें किसी और पार्टी में सम्मिलित होने जाना था।

वहाँ से दोनों सीधे कल्याण की ओर चल पड़े जहाँ हुमायूँ और दूसरे साथियों ने पिकनिक का प्रोग्राम बना रखा था—एक रंगीन सभा—प्रकृति की गोद में नृत्य और संगीत—फिल्मी लोगों का निजी जीवन भी इन्हीं रंगीनियों से भरपूर रहता है। बेला को ऐसी सभायें बहुत प्रिय थीं।

इन्हीं विचारों की सुन्दर तस्वीरें मस्तिष्क के छाया पट पर बनाती वह अपनी मंजिल की ओर उड़ी जा रही थी। बार-बार वह अपनी उंगलियों से आनन्द के माथे पर लहराते बालों को ठीक करती जो तेज हवा से फिर बिखर जाते। आनन्द ने बेला को खींचकर अपने और समीप कर लिया। बेला ने अपना सिर उसके सीने पर टेक दिया और सामने लगे दर्पण में से आनन्द को देखने लगी जो प्रसन्नता से और भी भला लग रहा था। आनन्द दबे स्वर में बोला—

“कह गाड़ी तुम्हारी है...भरी सभा में तुमने झूठ क्यों कहा?”

“यूँ ही कभी-कभी झूठ बोलने में आनन्द आता है।”

“कैसे?”

“जैसे आपने रजिस्टर में लिख दिया कि गाड़ी भोपाल के नवाब साहिब को देखनी है।”

इस बात पर दोनों जोर से खिलखिला उठे। बात भी कुछ ऐसी

थी, चोरी करने वाला और उसका भेद जानने वाला दोनों बराबर के अपराधी होते हैं।

“बेला !”

“हूँ...”

“यदि सचमुच ही यह गाड़ी मैं तुम्हें उपहार में दे दूँ तो...”

“तो...तो मैं अपने आपको कितना सौभाग्यशाली समझूँगी।”

“परन्तु डरता हूँ।”

“किस से ?”

“जरा भी बिगड़ोगी तो गाड़ी लेकर चली जाओगी...और मैं पैदल कहाँ दूँढ़ता फिरूँगा।”

“घबराइये नहीं... गाड़ी की चाबी आप ही के पास रखूँगी...और जब कभी भागने का अवसर आया तो आप को भी साथ ले उड़ूँगी।”

हँसते खेलते इन्हीं बातों में दोनों पूरी गति में उड़े जा रहे थे जैसे धरती से दूर किसी और मन-भावनी मंजिल की खोज में हों। नई गाड़ी, नई बीवी और जवान उमंगें...जब तीनों का मेल होता है तो खलबली सी मच जाती है...यही दशा थी उनकी...मन में भावनाओं का तूफ़ान बढ़ता गया और उसके साथ-साथ गाड़ी की गति भी।

अब वह बस्ता से बहुत दूर निकल चुके थे। गाड़ी की तेज़ गति के साथ बेला का हृदय बल्लियों उछलने लगा...आसपास भागती हुई हर वस्तु यूँ लगने लगी मानो उसकी कामनाओं की बरात सड़क के दोनों ओर उसके स्वागत में फूल बरसा रही है।

सहसा वह उछल पड़ी और उसकी चीख निकल गई।

सामने से आते हुये ट्रक ने तेज़ी से मोड़ काटा। आनन्द अभी सँभल भी न पाया था कि दोनों एक दूसरे को बचाते सड़क से नीचे उतर कर आपस में टकरा गये। धमाके के साथ ही आनन्द ने ब्रेक लगाई परन्तु गहराई होने से गाड़ी न रुक सकी। उसने शीघ्र बेला को कूद जाने का संकेत किया, इसके साथ ही ट्रक एक पेड़ के साथ जा रुका और कार

उलट गई। आनन्द ने फुर्ती से ब्रेक छोड़ दिया और दरवाजा खोल कर ज़मीन पर उगी भाड़ियों को मजबूती से पकड़ लिया और गाड़ी को नीचे जाने दिया।

बोझ अधिक होने से भाड़ियाँ उखड़ गईं और वह लड़खड़ाता हुआ एक खड में जा गिरा। बेला भागी-भागी आनन्द के पास आई जो पीड़ा से कराह रहा था।

ट्रक का ड्राइवर और सड़क पर काम करने वाले कुछ मजदूर भी उधर भागे। बेला ने उनकी सहायता से आनन्द को खड़ा करना चाहा परन्तु वह उठ न सका। बेला ने अपने घुटने पर उसका सिर रख लिया और उसके माथे पर आई चोट को आँचल से साफ करने लगी। दूसरे आदमियों ने दौड़ कर एक कार को रोका और आनन्द को उसमें डाल कर अस्पताल ले गये।

निरीक्षण हुआ और पता चला कि आनन्द की दाईं टाँग फ्रैक्चर हो गई है।

“तो क्या होगा?” घबराहट में बेला ने डाक्टर से पूछा।

“सब ठीक हो जायेगा, घबराओ नहीं,” सान्त्वना देते हुए डाक्टर ने कहा और भीतर आप्रेशन हाल में चला गया। बेला ने भी भीतर आने की इच्छा प्रकट की परन्तु डाक्टरों ने मनाही कर दी और एक नर्स को उसे दफ्तर में बिठाने को कहा।

थोड़ी देर में राय साहिब, मालिकन और कुछ और मित्र भी आ पहुँचे और उसी कमरे में बैठ कर प्रतीक्षा करने लगे। कम्पनी के जनरल मैनेजर ने जब बेला से घटना का पूरा हाल पूछा तो वह रोने लगी और कुछ न कह सकी।

वह जानती थी कि आज उसके कहने पर आनन्द ने कम्पनी का नियम तोड़कर गाड़ी बाहर निकाली थी। केवल वह इतना कह पाई थी कि पुलिस की छानबीन के लिये उन्हें फौरन घटनास्थल पर पहुँचना चाहिये।

तीन घण्टे के लगातार प्रयत्न के बाद आनन्द की पट्टियाँ बाँधी गईं और उसकी टाँग को पलस्तर में बन्द कर दिया गया। डाक्टरों के कहने पर बेला के सिवा सब मिलने वालों को लौटा दिया गया।

रात का अन्धकार खिड़कियों से भाँक रहा था। नर्स ने कमरे में प्रवेश करते ही बत्ती जला दी। उजाला होते ही आनन्द के पास बैठी बेला ने उदास चेहरा ऊपर उठाया। आनन्द अभी तक सो रहा था। नर्स ने दवा का प्याला मेज पर रख दिया और धीमे स्वर में बेला से कहने लगी, “नींद खुलते ही दे देना।”

बेला ने सिर हिलाया और आनन्द की ओर देखने लगी जो आराम से नींद में डूबा हुआ था। वह एक अज्ञात भय से डर रही थी। उसी का हठ इस घटना का कारण बना था। वह कुछ ऐसी ही उलझनों में खोई हुई थी कि बाहर द्वार पर आहट हुई। पर्दा उठा और सफेद साड़ी पहिने संध्या ने दबो पाँव कमरे में प्रवेश किया। उसे देखते ही बेला उठ खड़ी हुई और दबी आवाज़ से बोली, “दीदी...”

संध्या ने होठों पर उँगली रखते हुए उसे चुप रहने का संकेत किया और उसे थोड़ी दूर ले जाकर पूछने लगी, “यह सब क्योंकर हुआ?”

“भाग्य का चक्कर...” बेला की आँखों से आँसू टपक पड़े। संध्या ने अधिक पूछताछ उचित न समझी और उसे ढाडस बाँधाने हुये बोली, “तुम आराम करो... मैं यहाँ बैठती हूँ।”

“नहीं दीदी... अभी होश आते ही यह दवा...”

“मैं पिला दूँगी... जाओ थोड़ा आराम कर लो...”

संध्या के बहुत कहने पर वह सामने की आराम कुर्सी पर बैठ गई और टिकटिकी बाँधकर संध्या को देखने लगी जो धुँधली रोशनी में सफेद वस्त्र पहिने शान्ति की देवी लग रही थी।

नींद में लेटे-लेटे आनन्द ने हरकत की तो संध्या झट से उसके पास आकर खड़ी हो गई। बेला भी कुर्सी से उठकर आ गई।

जैसे ही आनन्द ने आँखें खोलीं बेला हट कर अंधेरे में हो गई। डर से उसका मन धक-धक करने लगा। उसने संध्या को दवाई पिलाने का संकेत किया। परन्तु उसने देखा कि संध्या के हाथ भी काँप रहे थे। शीघ्र ही संध्या ने अपने पर अधिकार पा लिया और आनन्द के सामने आकर धीरे से बोली—

“मैं हूँ...संध्या...”

“तुम...!” उसने विस्मित दृष्टि को कमरे की दीवारों पर दौड़ाया और कठिनाई से होंठ खोलते बोला, “मैं कहाँ हूँ?”

“हमारे पास...”

“नीलकंठ में...” उसके स्वर में कम्पन था।

यह शब्द सुनते ही दोनों बहिने सिर से पाँव तक काँप गईं और मौन खड़ी उसे देखती रहीं। वह फिर कहने लगा, “आखिर वही हुआ जो तुमने चाहा था...मैं ने भी बेला से कई बार कहा संध्या की बस्ती छोड़कर मत जाओ वरना वह हमें शाप दे देगी...”

“यह आप क्या कह रहे हैं...मेरा तो हर साँस आप और बेला के जीवन...अच्छा आप पहले यह दवाई पी ले।” यह कहते हुए संध्या ने चम्मच से दावई आनन्द के गले में उतार दी।

“बेला कहाँ है? उसे तो...”

“कुछ नहीं हुआ...बिल्कुल ठीक है...अभी बुलाती हूँ।”

“रहने दो,” आनन्द ने वहीं काट दिया। उसकी बात सुनकर बेला और पीछे हट गई और संध्या की ओर देखने लगी जो उसे निकट आने का संकेत कर रही थी। आनन्द थोड़ा रुक कर फिर बोला, “बेचारी सो रही होगी...उसे नींद में न जगाना...बहुत ही लाडली है अपने माँ-बाप की, इसीलिये तो तुम्हें नर्स बनाकर स्वयं सो गई।”

“नहीं...ऐसा नहीं...वह तो बैठी आप ही को प्रतीक्षा कर रही थी।”

संध्या ने लपक कर बेला को खींचकर आनन्द के सामने खड़ा कर दिया। वह उसकी भीगी उदास आँखों को देखकर कुछ गम्भीर हो गया और धीरे से बोला—

“बेला तुम ठीक हो।”

“हाँ बिल्कुल ठीक ‘‘भाग्य को मेरी मृत्यु स्वीकार न थी।”

“यह क्या बक रही हो तुम...” संध्या ने भट से कहा।

“सुना नहीं तुमने...मैं लाडली हूँ · इनकी सेवा नहीं कर सकती। इन्हें तुम्हारी असीसों की आवश्यकता है मेरी नहीं · मैंने ही इन्हें तुम्हारे नीलकंठ से दूर ले जाने को उकसाया...और उसका परिणाम...” वह फूट-फूट कर रोने लगी।

संध्या ने उसे प्यार से अपनी बाँहों में ले लिया और बोली—“पागल न बनो...देखो तो उनकी हालत ‘‘रही मैं...दो क्षण के लिये आई थी सो जा रही हूँ...मुझे कहीं शीघ्र पहुँचना है...इनकी बातों का बुरा मान गई...यह तो जिसे सामने देखते है उसी की प्रशंसा करने लग जाते हैं...यह तो इनका पुराना स्वभाव है...”

संध्या की आँखों से आँसू टपक पड़े और वह आँचल से उन्हें पोंछती बेला को सान्त्वना देते हुए बाहर चली गई। आनन्द ने उसे पुकारने का एक व्यर्थ प्रयत्न किया पर पीड़ा से कराह कर रह गया। बेला ने सहारा देते हुए कहा—

“डाक्टर ने हिलने की मनाही कर रखी है।”

“ओह...अब समझा...मेरी टाँग...”

“साधारण सी चोट आई है...दो चार दिनों में ठीक हो जायेगी।”

“तुमने व्यर्थ ही उसका मन घायल किया...सोचो तो वह क्या सोचेगी ...”

“अच्छा अब आप चुप रहिये...डाक्टर ने अधिक बोलने को भी मनाही कर रखी है,” बेला ने स्वर में दृढ़ता लाते हुए कहा और आनन्द

के पास बैठ गई। आनन्द ने हाथ उठाकर उसके गालों पर ठहरे हुए आँसुओं को पोंछ डाला।

वह गम्भीर ही रही। उस चोर की भाँति जिसने चोरी की हो पर फिर भी बल से दूसरे को बोलने का अवसर न दे। वह समझती थी कि यदि उसने अपने बर्ताव में नम्रता दिखाई तो आनन्द उसे ही घटना का उत्तरदायी ठहरायेगा।

रात आधी से अधिक बीत गई और आनन्द नींद की दवाई पीकर सो गया परन्तु बेला की आँखों में नींद न आई। कई प्रकार के भयानक और उलझे हुये विचार उसके मस्तिष्क के पर्दों पर आ कर चोटें लगाते रहे।

उसे अपने जीवन और अपनी सुन्दरता पर घमण्ड था पर आनन्द का चंचल मन फिर संध्या की सराहना करने लगा। आखिर उसमें कौनसी ऐसी आकर्षण शक्ति है जो हर थोड़े समय बाद आनन्द को उधर ले जाती है।

उसे यू अनुभव होने लगा जैसे आनन्द किसी समय भी उसे छोड़ कर चला जायेगा...पर यह उसका अपना ही भ्रम था...उसी के मन का चोर उसे भय की जंजीरों में जकड़े हुए था...वरना आनन्द...वह तो स्वयं उसका बन्दी था...

“पिता जी...उन्होंने बम्बई में दोबारा लेने से इन्कार कर दिया है,” आनन्द ने अपने पिता को जो अभी स्टेशन से लौटे थे कम्पनी की चिट्ठी बताते हुए कहा। उन्होंने चश्मा निकाला और चिट्ठी को पढ़ते-पढ़ते पास ही कुर्सी पर बैठ गये।

“पर यह बीनापुर कहाँ है?”

“बम्बई से कोई सौ मील दूर...कल्याण से गाड़ी बदलते हैं।”

“अच्छा अब समझा...जहाँ तुम्हारी कम्पनी की वर्कशाप है।”

“जी...अब वहीं की देख-भाल के लिये नियुक्त किया है।”

“परन्तु उन जंगलों में रह सकोगे क्या?”

“अब तो रहना ही होगा पिताजी...” आनन्द ने मुस्कराते हुये उत्तर दिया। बाबा मुस्कराते हुए भीतर चले गये तो आनन्द ने फिर उस चिट्ठी को खोला और पढ़ने लगा।

आज खंडाला में आये उसे एक महीना होने को आया था। अस्पताल से उसके बाबा सीधा दोनों को खंडाला ले आये थे। पट्टियाँ खुलने पर टाँग का टूटा हुआ जोड़ तो ठीक हो गया पर टाँग बहुत कमजोर हो जाने से इस योग्य न हो सकी कि वह चल-फिर सके।

आनन्द के अच्छे रिकार्ड के कारण उसे नौकरी से निकाला न गया। राय साहिब ने भी मिल-मिला कर उसके केस को दबवा दिया, फिर भी दोबारा उसे नियुक्ति न मिली।

इतनी बड़ी पोजीशन छोड़कर अब वह बीनापुर की वर्कशाप का मैनेजर बनना पसन्द न करता परन्तु घरेलू परिस्थितियों और अपनी नववधू के कारण जिसे वह कभी दुखी देखना न चाहता था उसे यह नियुक्ति स्वीकार करनी पड़ी।

जब बेला उसके लिये संतरे के रस का गिलास लेकर आई तो यह खबर उसने उसे भी सुनाई। पहले तो वह यह सुनकर कुछ उदास सी हो गई परन्तु यह जानकर कि वह खंडाला से दूर चली जायेगी उसे थोड़ी सी प्रसन्नता हुई। वह आनन्द के साथ अकेले में रहना चाहती थी चाहे बम्बई की बा-रौनक गलियाँ हों या बीनापुर के सुनसान पहाड़...कोई ऐसा स्थान जहाँ सास और समुर की टोक न हो...बस एक वह हो और दूसरा आनन्द।

बिस्तर में अधिक समय रहने के कारण आनन्द कुछ चिड़चिड़ा हो गया था। बीमारी में जब कभी भी मां या घर के दूसरे व्यक्ति आनन्द की सेवा करते तो बेला जल-भुन कर कोयला हो जाती। वह सब काम अपने ही हाथों से करना चाहती थी। उसे अपने दोनों के जीवन में किसीका भी हस्तक्षेप अच्छा न लगता। वह यह पसन्द न करती कि आनन्द का भुकाव उसके अतिरिक्त किसी और हो चाहे वह उसके माता पिता ही क्यों न हों। इसी उद्विग्नता में कभी-कभी वह आनन्द से कह बैठती—

“जी चाहता है कही भाग जाऊँ।”

“तो मेरा क्या होगा ?” आनन्द मुस्कराते हुये कह उठता।

“आपका...यही विवशता तो मेरे पाँव में बेड़ियाँ डाले हुए है,” वह उत्तर देती और आनन्द के बालों से खेलने लगती। बेला के यह भाव अब आनन्द के मन को गुदगुदाने के बजाय परेशान कर देते।

वह सोचने लगता न जाने बिचारी के मन पर क्या बीतती होगी... सब घटना इसी के हठ से हुई...शायद इसीलिये उदास रहती है। वह

बार-बार उसके मन को पढ़ने का प्रयत्न करता परन्तु उसकी थाह कहाँ थी ।

आखिर वह दिन भी आ गया । कुम्हलाई हुई कलियाँ खिल उठीं । मदमाते यौवन में फिर से मादकता अंगड़ाइयाँ लेने लगी । आँखों में ठहरे हुए शुष्क आँसू फूट कर मन की भड़ास बाहर निकालने लगे । बोला की आशायें पूर्ण हुईं । आज पूरे तीन महीनों बाद वह सांसारिक भ्रमेलों से दूर आनन्द की बाहों में अकेली थी । यह अवसर उसे बीनापुर की बियाबान पहाड़ियों में मिला जहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य उसे बहुत भाया ।

वर्कशाप से थोड़ी ही दूर एक भील के किनारे एकान्त में उन्हें एक छोटा सा बङ्गला मिला जो पुराना तो था पर नये ढंग का था । दो वर्ष पहले एक अँग्रेज और उसकी बीवी यहाँ रहा करते थे । बोला इस छोटे से घर को अपनी छोटी सी सुन्दर दुनियाँ में बदल देना चाहती थी जहाँ उसका राज्य हो और आनन्द उसका बन्दी । जहाँ न प्रजा हो और न नियम । उसी का हर आदेश नियम बन जाये, हर श्वास जीवन और हर निश्वास मृत्यु । वह एक नया संसार बनाना चाहती थी—एक निराला संसार—उस नीलकण्ठ से भी सुन्दर जो कभी-कभी आनन्द के मस्तिष्क में आकर उसे भूली बिसरी बातें याद करा देता था ।

इसी निश्चय को लिये वह दिन रात इस छोटे से बंगले को सजाने लगी । गोल कमरा, सोने का कमरा और खाने का—इन तीनों को उसने ऐसा सजाया जैसे किसी ने इस उजाड़ में स्वर्ग उतार दिया हो । वह अब इस छोटे से संसार में वह माधुर्य भरने का प्रयत्न कर रही थी जो आनन्द को ऐसे जकड़ कर रखे कि वह उसकी इच्छा के विपरीत एक पग भी न उठा सके ।

दो महीने बीत गये और बेला का स्वप्न सत्य बन गया । आनन्द सच मुच उसकी बनाई हुई इस दुनिया का मतवाला हो गया । घर के हर कोने में उसे बस एक तस्वीर दिखाई देती—बेला की जिसके हर भाव,

प्यार और स्वर में एक आकर्षण सा अनुभव होता जो आनन्द को अपनी ओर खींचे जाता ।

एक दिन वर्कशाप से लौटकर उसने बेला को सूचना दी कि रात की गाड़ी से मोहन उनके पास आ रहा है । बेला इस खबर से कुछ घबरा सी गई, पर अपनी घबराहट को छिपाते हुए बोली—“मोहन !... वह कैसे ?”

“हां मोहन...परन्तु यह...”

“ओह ! मेरा आशय था यह अचानक आना क्योंकर हो गया ?”

“स्कूल में दो महीने की छुट्टियाँ जो हैं...पहले माँ-बाप के पास जाता था इन बार सोचा होगा भाभी के पास रह जाऊँ...परन्तु यह...”

“जी...”

“जान पड़ता है तुम्हें उसके आने की प्रसन्नता नहीं ।”

“नहीं तो... मैं किसी और ही विचार में डूबी हुई थी...सोच रही थी यदि खाना शीघ्र बनवा लूँ तो आपके संग स्टेशन चली चलूँ ।”

“ओह, क्यों नहीं... तो शीघ्र तैयारी कर डालो...”

आनन्द से अलग होकर वह रसोईघर में चली आई । मोहन उसका छोटा देवर था जो ईगदपुरी में मिशन स्कूल में शिक्षा पाता था । बचपन में ही खेल-कूद में उसकी टांग टूट गई थी और वह लंगड़ा कर चलता था । इसीलिए उन्होंने उसे बोर्डिंग हाउस में रख छोड़ा था कि लड़कों में प्रसन्न रहे ।

घर पर भी उसी बहुत आव-भगत होती । छोटा बड़ा हर कोई अपनी हर इच्छा को पूरा करने का प्रयत्न करता । माँ-बाप उसे देखकर मेशा उदास हो जाते । वे जानते थे कि इसका भविष्य अंधकारपूर्ण है । इसलिए उसके भोले मन को कोई ठेस न पहुँचनी चाहिए ।

यही बात आनन्द ने बेला से भी कह दी कि मोहन आज पहली बार उनके पास आ रहा है...उसे कभी यह अनुभव न होने देना चाहिये कि जीवन उसके लिये बोझ बन गया है जो वह उठा न सकेगा । आनन्द ने

उससे यह भी कहा कि घर में अब उसे दूसरा साथी मिल जायेगा । इस पर उसके सामने तो वह मुस्करा दी पर उसके मन से यूँ धुआँ निकलने लगा जैसे किसी जलती हुई चीज़ को उसने राख तले छिपा दिया हो । वह अपने जीवन में किसी का हस्तक्षेप पसंद न करती थी । मोहन दो महीने यहाँ रहेगा और उनके सुहावने जीवन में कांटे के समान खटकेगा... यह सोचकर वह मन ही मन खीज उठती पर मुँह से कुछ न कह सकती ।

उसी रात मोहन आ गया । भाभी और भैया दोनों उसे स्टेशन पर लेने गए थे । बेला ने कंधे का सहारा देकर उसे गाड़ी में बिठाते हुए कहा —

“मोहन, कितना अच्छा हुआ तुम यहाँ आ गये ।”

“सच भाभी, मैं तो सोच रहा था कि कहीं मुझ अपाहिज को देख कर भाभी नाक ही सकोड़ लेंगी ।”

“तुम्हारी भाभी ऐसी नहीं... और तुम मन क्यों छोटा करते हो, ठीक हो जाओगे ।”

“तुम भी दूसरों के समान झूठी तसलियाँ देने लगेंगे । अब मैं जान गया हूँ यह टाँग कभी ठीक न होगी ।”

मोहन की यह बात सुनकर दोनों चुप हो गए । वे जानते थे कि कुरे-दने से पीड़ा बढ़ेगी ही ।

मोहन को बीनापुर बहुत अच्छा लगा... भील के किनारे उनका छोटा सा सुन्दर मकान... पक्षियों के मधुर गीत और दूर घाटी में गूँजती हुई झरनों की भर-भर... बरामदे में बैठकर जब वह यह सुन्दर दृश्य देखता तो उसके मन में गुदगुदी सी उठती, वह इस घाटी की गोद में एक शांत सी अनुभव करता... यहाँ लोगों का हू-हल्ला, साथियों के ठहाके और उबो-छेड़छाड़ न थी... उसकी हर मुस्कान का साथ देने के लिये आनन्द, बेला और प्रकृति का यह दृश्य था ।

एक दिन इसी ध्यान में खोया वह भाभी से कह उठा —

“जी चाहता है जीवन भर इसी तुम्हारी बगिया में पड़ा रहूँ।”

“क्यों नहीं... अब हम तुम्हें जाने थोड़ा ही देंगे,” भाभी ने धीरे से कहा।

“हाँ मोहन, तुम पढाई पूरी कर लो... फिर तो यहीं रहना है तुम्हें हमारे पास,” पास ही कुरसी पर बैठे आनन्द ने कहा।

आनन्द की यह सांत्वना हो सकता है समय की आवश्यकता हो हो, पर बेला जानती थी कि इस अपाहिज का बोझ उन्हें ही जीवन भर उठाना होगा। यह सदा के लिये उनके जीवन की गति को रोकने वाला पत्थर होगा जिसे न तो वह छोड़ सकेंगे और न साथ ले जा सकेंगे।

संसार के रख-रखाव को समझते हुए वह हर पग ऐसा उठाना चाहती थी कि कोई भी उसके हृदय की गहराइयों को नाप न सके... उसका स्नेह, बर्ताव, मीठा स्वर और होठों पर हर समय नाचती हुई मुस्कान मोहन को उसका दीवाना बना गई और वह हर समय भाभी के ही गुण गाने लगा। यह सब देख आनन्द को हादिक प्रसन्नता होती।

परन्तु वह बेला के मन की गहराइयों में छिपी वह पीड़ा न अनुभव कर पाता जो अपने दोनों के मध्य मोहन को देखकर जागृत हो उठनी वह मन ही मन क्रोध से जल कर रह जाती। काम से लौटने के पश्चात् आनन्द भी मोहन के पास जा बैठता और इधर-उधर की बातों से उसका मन बहलाने का प्रयत्न करता।

कमरे के एक कोने से छिपी बेला कितनी देर तक एक टक उन्हें देखती रहती और अपनी बेबसी पर मन से उठते धुँए को मन ही मन पी जाती। वह उन घरेलू स्त्रियों की भाँति जीवन व्यतीत न करना चाहती थी जो दिन भर पति के संकेतों पर अपनी बलि देती हैं और रात के अंधेरे में उसकी वासना पूर्ति के लिये उसके मुँह से दो मीठे बोल सुनकर प्रसन्न हो जाती हैं।

वह इस घर की रानी थी और आनन्द के मन पर राज्य करना अपना अधिकार समझती थी, ठीक उसी राजा के समान जिसने बड़ी कठिनाई से किसी देश को विजय किया हो और अब उस पर अपना झंडा फहराता हुआ देखना चाहता हो।

उसने देखा जब से मोहन उनके पास आया है आनन्द का व्यवहार बदल गया है। काम से लौटते ही बस एक बहलावे की मुस्कान उसके लिये थी “हेलो, बेला” और फिर वही मोहन की पुकार। कहीं दो घड़ी के लिए भी बाहर जाते तो विवशतः मोहन को साथ ले जाना पड़ता और फिर थोड़ा ही चलकर घर लौट आते क्योंकि अधिक चलना मोहन की टांगें सहन न कर सकतीं। यदि कभी उसे अकेला छोड़ कर दो घड़ी के लिये कहीं निकल भी जाते तो उसका ध्यान उन्हें बढ़ने न देता।

इसी उलझन में बेला का जीवन दूभर होने लगा। कभी-कभी उसे उदास देखकर आनन्द पूछ भी बैठता, “क्या है बेला?”

“कुछ भी तो नहीं……”

आनन्द चुप हो जाता। वह बात को अधिक कुरेदना न चाहता था। वह जानता था कि वह उसकी इच्छाओं को ठीक पूर्ण नहीं कर पाता। वर्कशाप में लगने से वेतन बम्बई से आधा रह गया था। घर का व्यय पूरा होने के पश्चात् इतना फ़ालतू न था कि वे जीवन को अधिक सुहावना बना सकें।

एक दोपहर को अचानक बेला के कानों में आवाज़ आई—

“भाभी……”

“क्या है मोहन?” उसने बिस्तर पर लेटे ही पूछा।

“कोई मिलने आये हैं।”

अपने बालों को संवारती हुई वह अर्धनिद्रा में ही गोल कमरे में चली आई जहाँ मोहन बैठा पढ़ रहा था।

“आप कब आये?” भट उसकी जुबान से निकला और वह बैठने का संकेत करते हुए आगे बढ़ी।

यह मिस्टर हुमायूँ थे जो इन घाटियों में किसी नई शूटिंग के सिल-सिले में आए थे और कामसे अवकाश पाते ही आनन्द से मिलने चले आए थे—बोले, “आनन्द कहाँ है ?”

“आते ही होंगे...पांच बजे वर्कशाप बन्द हो जाती है।”

“तो मैं ठीक वक्त पर ही पहुंचा, हुमायूँ,” ने घड़ी देखते हुए उत्तर दिया जो साढ़े चार बजा रही थी।

“और अवसर भी अच्छा है...” पास बैठा मोहन बोल उठा।

“वह कैसे ?”

“चाय भी मिल जायेगी।”

मोहन के इस भोले उत्तर पर दोनों हँसने लगे। बेला ने बताया कि मोहन आनन्द का छोटा भाई और उसका इकलौता देवर है।”

इधर उधर की बातें होती रहीं, कुछ फिल्मों की, कुछ बम्बई की और कुछ इन सुन्दर पर्वतों की। हुमायूँ ने जब धूम-फिर कर बंगले को देखा तो बोला—

“सच पूछो भाभी...तुमने दुनिया की नजरों से दूर एक नन्ही जन्नत बना रखी है।”

“परन्तु केवल अपने लिए...इतनी छोटी कि हम दोनों के अति-रिक्त तीसरा न समा सके।

“मैं भी तो यहाँ हूँ,” मोहन बीच में बोल उठा।

“ओह, मैं तो भूल ही गई...हम तीनों के लिए।”

मकान में घूमते हुए दोनों बरामदे में आ खड़े हुए। सामने भील का दृश्य और किनारे पर हरी भरी पर्वतीय माला अति सुन्दर दिखाई दे रही थी। हुमायूँ इस दृश्य का आँखों से रसपान करते बोला—

“कितना खूबसूरत है ?”

“क्या ?” चौंकते हुए बेला ने पूछा।

“यह नजारा...गहरी नीली भील...और यह खामोशी...जी चाहता है एक कहानी लिख डालूँ फिल्म के लिए।”

“विचार तो अच्छा है... कहानी बड़ी रोमांस भरी होगी।”

“हाँ... यदि आपने इजाजत दी तो इसकी शूटिंग भी यहीं की जाएगी।”

“परन्तु एक शर्त पर।”

“वह क्या?”

“कहानी की हीरोइन का पार्ट मुझे मिले।”

उसकी बात सुनते ही हुमायूँ हँसने लगा और बेला उसके चेहरे को आश्चर्य से देखने लगी जैसे उसमें कोई हँसने की बात न हो। उसे उस गम्भीर प्रस्ताव को हँसी में उड़ाना अच्छा न लगा।

हुमायूँ गम्भीर होते बोला—“भाभी इस जन्नत को छोड़कर उस दोजख में क्यों जाओ।”

बेला ने बात सुनी अनसुनी कर दी। वह जानती थी कि किसी का भी मूल्य उसके निकटतम सम्बन्धी नहीं बल्कि पराये ही लगा सकते हैं। आज तक उसे हुमायूँ की कम्पनी के मालिक के वह शब्द याद थे ‘आप हीरोइन बनें तो आसमान पर चमक सकती हैं।’

बेला भी जब कभी घर की परिस्थितियाँ देखती और उनके विषय में सोचती तो स्वयं कुछ करने की इच्छा उसमें प्रबल हो उठती। वह पुनः ऊँचाइयों को छूना चाहती थी जिनसे वह गिरादी गई थी। तभी उसे आनन्द का विचार आया जिसे पाने की इच्छा ने उसे जीवन के किन तूफानों से टक्कर लेने पर विवश किया। वह अपने प्रेम-संसार में किसी काँटे को आने देना न चाहती थी... जो बात आनन्द को न भाए वह करना उसे जरा कठिन प्रतीत हो रहा था।

वर्कशाप बन्द होते ही आनन्द सीधा घर आया। वहाँ हुमायूँ को बैठे देखकर फूल न समाया। उसे गोल कमरे में बिठा कर वह सीधा आंगन की ओर आया जहाँ मोहन बैठा भैया के आने की प्रतीक्षा कर रहा था जिसे देखते ही उसके मुख पर प्रसन्नता की लालिमा दीढ़ने

लगती । आते ही आनन्द ने एक पैकट मोहन के हाथों में देते कहा—“लो, माँ ने भिजवाए है ।”

‘क्या ?’

“लड्डू...तुम्हारे लिए ।” प्यार से उसके कंधे को थपथाते वह रसोई-घर की ओर बढ़ा । सामने बेला दीवार का सहारा लिए उसी को देख रही थी । उसके मुख पर अभी तक गम्भीरता छाई थी । आनन्द इस पर्दे में छिपा रहस्य भाँप गया और मुस्कराते हुए उसके बिल्कुल पास आ कर बोला—

“जानती हो प्रतीक्षा में कितना आनन्द है ।”

‘जितनी डाह की अग्नि में जलन ।’

“परन्तु तुम्हे यह अग्नि लगी क्योंकर ?”

“आपकी वेवफा दृष्टि देख कर ।”

“पगली कहीं की...क्या व्यर्थ बातें सोचती रहती हो...अच्छा शीघ्र चाय लाओ, फिर तुम्हें ...”

“फिर क्या ?”

“फिर तुम्हें एक शुभ सूचना सुनाऊँगा ।”

‘क्या ?’

“चाय के बाद ।”

‘नहीं...इतनी प्रतीक्षा न हो सकेगी ।’

“तो सुनो...कल मैं तुम्हारे मायके यानी अपनी समुराल जा रहा हूँ ।”

“किसलिए ?”

“कम्पनी के काम पर...मोटरो के पुर्जो इत्यादि का प्रबंध करना है...और हाँ इस बार मेरा अधिक व्योपार तुम्हारी दीदी से होगा ।”

दीदी का शब्द सुनते ही वह सिर से पाँव तक काँप गई । वह आश्चर्य से विफरित दृष्टि अभी आनन्द पर जमा भी न पाई थी कि आनन्द बात को जारी रखते हुए बोला—“हाँ, तुम्हारी दीदी के कारखाने

में बने हुए पुर्जों को हमारी कम्पनी ने बहुत पसंद किया है और उसके साथ एक एग्रीमेंट लिखने को कहा है ।”

“क्या एग्रीमेंट ?”

“व्योपार का...चंद पुर्जों की मनापली हम ले रहे हैं...इसमें हमारा भी लाभ है और... तुम्हारी दीदी का भी...”

“ओह...तो अच्छा ही है...दीदी भी क्या याद रखेगी कि आप उसके कितने काम आए ।”

“और मजे की बात यह है,” वह मुसकराते हुए बोला, “संध्या अभी तक यह नहीं जानती कि हमारी कम्पनी और उनके कारखाने के मध्य बातचीत के पीछे मेरा हाथ है ।”

“और जब वह यह जान पायेगी तो प्रसन्नता से फूली न समाएगी ।” बेला ने मन ही मन यह बात सोची पर मुँह तक न ला सकी और तेजी से चाय बनाने लगी ।

वह जानती थी कि व्योपार की आड़ में गुप्त-व छुप इनके मन की अपनी कामना पूर्ति होगी । वह जितना भी आनन्द के मन को अपने आधीन रखने का प्रयत्न करती वह इतना ही बादल के आवारा टुकड़ों की भाँति भटकने लगता ।

हुमायूँ के चले जाने पर बेला बोली—“मैं भी सँग चलूँगी ।”

“कहाँ ?”

“बम्बई । पापा कई बार लिख चुके हैं...अवसर भी अच्छा है...दोनों जा रहे हैं ।”

“नहीं बेला ऐसे समय तुम्हारा जाना ठीक नहीं ।”

“वह क्यों ?”

“मैं जो है...उसे अकेले छोड़कर जाना उचित नहीं ।”

परन्तु हम दोनों अकेले...इस सुनसान...”

“विशु को कह दिया है वर्कशाप बन्द होते ही वह यहाँ आजाएगा,

रात तक तो खाने आदि में सहायता देता ही है दो चार रात सो भी यहाँ रहेगा ।”

“तो क्या मोहन दो दिन विशु के पास न रह सकेगा ?”

“नही...तुम भी विचित्र बातें करती हो...भला उसको अकेले छोड़कर हम क्योंकर जा सकते हैं ।”

बेला चुप हो गई । वह जानती थी कि आनन्द मोहन के मन को कभी दुखी नहीं करना चाहेगा चाहे उसकी बीबी का मन छलनी ही क्यों न हो जाए...और फिर तो वह एक समय पश्चात अपने बसेरे नील-कंठ जा रहा है “स्वतन्त्र वातावरण में खुलकर मन की बातें होंगी...आशा की कलियाँ खिलेगी...महाशय कम्पनी में उसका माल लगवाने का उपकार जतायें ही और वह भुकी-भुकी लजाई सी दृष्टि से उनका धन्यवाद करेगी ।

कितना विचित्र लगेगा दोनों को । दोनों एक दूसरे के निकट होते हुए भी अपने आप को एक अनोखी वेबसी में जकड़ा पायेगे...मन की मन में ही रह जायेगी...दीदी अपने पवित्र प्रेम में घुटी हुई और यह अपनी भलमांसी में...वह यह सोचकर गुदगुदा उठी...

कही यह घुटन समाप्त हो गई तो...यह मौन टूट गया तो...एका एक ही इस विचार ने उसे फिर चिन्ता में डाल दिया...उसे लगा जैसे कोई गुप्त शक्ति आनन्द को उससे दूर खींच कर लिये जा रही है । बेला के लाख साधन सोचने पर भी आनन्द दम्बई चला गया और वह उस वन में अकेली बैठी अपनी मानसिक उलझनों में पड़ी रही ।

वर्कशाप में आज छुट्टी थी और विष्णु सवेरे से ही घर में था । बेला बरामदे में बैठी झील का दृश्य देख रही थी । वत्तखों का एक सुन्दर जोड़ा पानी को चीरता हुआ धीरे धीरे बढ़े जा रहा था । एकाएक ऊपर से किसी पक्षी ने झपटा मारा और दोनों अलग होकर भिन्न-भिन्न दिशाओं में भागने लगीं । बेला और मोहन दोनों ने यह दृश्य देखा । मोहन के होठों पर भोली-भोली मुस्कराहट बेला को जैसे साँप

बनकर डस गई...उसे प्रतीत हुआ जैसे मोहन ने भी उनके सुहावने जीवन पर ऐसा भपट्टा मारा है जैसा कि इस पक्षी ने बत्तखों के जोड़े पर ।

आज यदि मोहन न होता तो वह आनन्द के साथ अवश्य बम्बई चली जाती । वह उसे अकेले कभी न जाने देती...फिर उसे जब इस बात का विचार आया कि पढ़ाई के पश्चात् मोहन सदा के लिये उन्हीं के पास रहेगा तो वह भीतर ही भीतर फुकने लगी...लंगड़ा कही का—

उसके मस्तिष्क में गहरी भील का पानी अपनी छाया डालने लगा । वह उठी और उसके बिल्कुल किनारे बैठ कर अपने पांव ठण्डे पानी में डाल दिए । मोहन ऊंचे स्वर में चिल्लाया—

“भाभी, क्या डूबने का विचार है ?”

“नहीं तो...भला तुम्हें छोड़ अकेली कैसे डूबूंगी ?”

“तो मैं भी आऊँ...?”

“मेरा मतलब था तुम्हें घर में अकेले छोड़ भला मैं कैसे डूबूंगी ।”

मोहन खिलखिला कर हंस पड़ा और बेला भी अपनी हँसी न रोक सकी । थोड़ी देर बाद वह मोहन से बोली—

“आज स्नान वहीं करोगे ?”

“आप भी तो अभी तक नहाई नहीं ।”

“आज न जाने क्यों जी सुस्त सा है ।”

“तो भाभी भील में कूद जाओ...भैया कहते थे तुम्हें खूब तैरना आता है ।”

“कहीं डूब गई तो भैया को क्या कहोगे ?”

“छी, छी, छी...कैसी बातें करती हो ।”

विशनु बाहर आया तो मोहन ने उसे तेल लाने को कहा । सवेरे की पुनहरी किरणों में वह प्रतिदिन विशनु से शरीर पर तेल की मालिश करवाता था जिससे उसके जोड़ अच्छी तरह खुल सकें । बेला भी भट नीतर गई और तैरने का जोड़ा पहिन कर बाहर आकर भील में कूद

पड़ी। मोहन और विशनु खिलखिला कर उत्साह से उस पानी को चीरती हुई मछली को देखने लगे।

विशनु ने मोहन की पीठ पर तेल मलते हुए कहा—

“तुम्हारी भाभी भी तो किसी मछली से कम नहीं।”

“हाँ विशनु...और फिर पानी और हवा दोनों में रहती है।”

मोहन की यह बात सुनकर विशनु हँस पड़ा और उसकी नसों को जोर जोर से मलने लगा। बेला तैरती हुई किनारे तक आ पहुँची और धड़ बाहर निकालकर बोली—

“आओ मोहन तुम्हें तैरना सिखाऊँ।”

“ऐसे भाग्य कहाँ भाभी...” मोहन ने गम्भीर होकर उत्तर दिया और उसकी आँखें भर सी आईं जैसे वह अपनी बेबसी पर रोना चाहता हो पर रो न सके। विशनु ने उसके मन की दशा भाँपते हुए सांत्वना देकर कहा :—

“साहस न छोड़ो...मुझे विश्वास है कि एक दिन तुम अवश्य चल फिर सकोगे।”

“यही तो मैं भी कहती हूँ,” बेला ने बाहर निकलकर शरीर पर बड़ा तौलिया लपेटते हुए कहा, “साहस रखना चाहिये...आज मैं तुम्हें तैरना सिखलाती हूँ।”

“मेम साहिब...” विशनु ने आश्चर्य से उसका दृढ़ निश्चय देखते हुए कहा।

“हाँ विशनु...लाओ मैं मोहन को मालिश करती हूँ...तुम जाओ काम पर देर हो रही होगी।”

“आज तो वर्कशाप में छुट्टी है।”

“ओह...तो काम से छुट्टी करो...जाओ बस्ती में घूम फिर आओ,”

“परन्तु खाना...”

“मैं तैयार कर लूंगी...एक तो छुट्टी आती है सप्ताह में...जाओ आराम करो...काम तो होता ही रहेगा।”

विशनु बेला की बात सुन कर हैरान हो गया पर कुछ न कह सका
 “जब वह भीतर गया तो बेला ने उसे पाँच रुपये का नोट देते हुए
 कहा—“देखो...शाम को समय पर घर आ जाना...थोड़ा सा मोहन के
 लिये फल और एक दर्जन अण्डे लेते आना।”

विशनु ने पाँच का नोट धोती में बांध लिया और थैला उठा कर
 बस्ती की ओर चल पड़ा... वह बेला की आँखों में आज एक विचित्र
 चमक देख रहा था जिसमें प्यार के साथ भयानक बिजली भी छिपी
 हुई थी।

वह घर से निकल तो पड़ा पर उसके पांव न जाने बस्ती की ओर
 न उठ रहे थे...उसका अज्ञात मन कह रहा था कि उसकी अनुपस्थिति
 में कोई असाधारण घटना घटने वाली है। बाबू जी उस पर घर का पूरा
 उत्तरदायित्व छोड़ गये हैं...और किसी को कुछ हो गया तो...वह यह
 सोच कर काँप उठा। इसी उलझन में वह एक घनी भाड़ी की ओट में
 बैठकर भील को देखने लगा। वहाँ से हिलने को उसका मन न किया।

बेला ने जब देखा कि विशनु बस्ती में चला गया है और हर
 ओर फिर से मौनता छा गई है तो उसने सुख की साँस लेते हुये दूर तक
 दृष्टि दौड़ाई। उसका हृदय तेजी से धड़क रहा था जैसे कोई पक्षी पिंजरे
 से सिर पटक रहा हो। उसे व्याकुल देखकर मोहन बोला—

“क्यों भाभी, क्या सोच रही हो?”

“ओह...तुम्हारे ही विषय में सोच रही थी। यदि तुम विवश न
 होते तो आज तुम्हें तैरना सिखाती।”

“तो मैं तैयार हूँ...तुम ही तो कहती हो साहस रखना चाहिए।”

“पर मन नहीं मानता...अच्छा एक युक्ति सूझी है...”

“क्या?”

“अभी बताती हूँ...” यह कहकर बेला सीढ़ियाँ उतरकर भील के
 किनारे जा पहुँची और थोड़ी दूर बंधी हुई सरकारी नाव को खोल चप्पू
 से खेती बरामदे की सीढ़ियों तक ले आई।

